वर्ष ८, अंक ३

श्रीकृष्णाय नमः

मार्गशीर्ष पूर्णिमा १९९०

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

भक्ति के नियम

१. भगवान की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) या इससे अधिक देंगे वह पत्रके संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिए।

भक्ति के संरक्षक और सहायक

राव श्रीराम जी रईस नांगल	१२५)
भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी	१२१)
ला० गोपालदास जी रईस लाहौर	१११)
धर्म सिंह भावजी जेठवा कोलरीप्रोप्राइटर झरिया	१२०)
आनरेबिल ला० गोकलचन्द जी नारंग वज़ीर लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट लाहौर	१०१)
बाई बदामो देवी पुत्री लाला गनेशीलाल चर्खीदादरी	१०१)
श्रीमती रानी निहालकोर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलवीरसिंह जी	१०१)
राव बहादुर, कप्तान राव बलवीर सिंह जी ओ० बी० ई रामपुरा	५१)
चौधरी शिवसहाय जी कोसली	५१)
लाला श्यामलाल जी कपूर दिल्ली	५१)
महाशय शोभाराम जी डूंगरवास	२५)
डाक्टर झवेरभाई नारायणभाई देसाई महुधा जिला कैरा	२५)
पण्डित पन्नालाल जी लोपखाना नं० ५ अम्बाला	५२)
चौधरी उमराव सिंह पहाड़ी धीरज दिल्ली	१५)
पण्डित जयराम जी 'सनातन' देहली	५)
जमादार दीपचन्द जी	५)

विषय सूची

नं०	लेख	लेखक	पृष्ठ
१.	वेदोपदेश	...	६५
२.	अन्तर्ज्योति	[ले० श्रीस्वामी भोले बाबा जी	६६
३.	आदर्श स्त्री जीवन	[ले० श्रीमती व्रजकुमारी 'प्रभाकर	७४
४.	वैकुण्ठ या साकेत	[ले० श्रीमहावीर प्रसाद जी बजरंग बली 'श्रीवास्तव''	७६
५.	विश्वास में	[ले० श्री प्रभुदेव जी ब्रह्मचारी	७९
६.	योग साधन	[ले० श्रीस्वामी शिवानन्द जी सरस्वती	८०
७.	मन के मानो (कविता)	[ले० महाकवि पु० प्रतापनारायण जी	८५
८.	भगवान क्यों नहीं मिलते	[ले० श्री प्रेमपथ पथिक	८६
९.	शरीर पर मन का प्रभाव	[अनुवादक श्री नूनकरण दास जी	८७
१०.	मोक्ष के साधन	[ले० श्री महात्मा राम	९१
११.	अद्वैतामृत	...	९४
१२.	भजन	...	९६

GITA PRESS, GORAKHPUR.

जगमोहन

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ८ } श्री भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, मार्गशीर्ष पूर्णिमा, नवम्बर १९३३ { अंक ३ पूर्ण संख्या ८७

वेदोपदेश

उक्थं चन शस्यमानं नागो रयिरा चिकेत। न गायत्रं गीयमानम् ॥ १ ॥

हे इन्द्र! इस समय स्तुति न करने वाले के धन को जानते हो, इस समय पढ़े जाते हुवे स्तोत्र को भी जानते हो, इस समय गाये जाते हुवे गायत्र नामक साम को भी जानते हो, इस कारण हम तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

मान इन्द्र पीयत्नवे मा शर्धते परा दाः। शिक्षा शचीवः शचीभिः ॥ २ ॥

हे इन्द्र! तुम हिंसा करने वाले शत्रु के अर्थ हमें न छोड़ो, तिरस्कार करने वाले के लिये हमें न छोड़ो। हे शक्तिवान् इन्द्र! अपने पराक्रमों से हमें अभीष्ट धन दो ॥ २ ॥

पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानुना।
पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे ॥ ३ ॥

हे अग्ने! शुद्ध करने वाली है दीप्ति जिसकी ऐसा निर्मल है तेज जिसका ऐसा पूर्ण तेजस्वी तू तेज के साथ प्रकट होता है, ऐसा तू पृथ्वी का मित्र यज्ञ में स्तुति करने वालों से प्राप्त होता हुआ समीप के यजमानों की रक्षा करता है, द्यावा पृथिवी दोनों को संयुक्त करता है अर्थात् इन्द्र से सुखों को और वृष्टि से इस लोक को पूर्ण करता है ॥ ३ ॥

इष्कर्त्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तं राधसो महः ।
रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिं रयिम् ॥ ४ ॥

यज्ञ का संस्कार करने वाले, श्रेष्ठ ज्ञान वाले और बहुत से धन के ईश्वर और धन देने वाले तुम्हारी हम स्तुति करते हैं। तुम सौभाग्य युक्त बहुत सा अन्न और मांगने योग्य धन स्तुति करने वालों को देते हो ॥ ४ ॥

ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः ।
श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥ ५ ॥

ऋत्विज आदि यज्ञ के सम्बन्धी और पूजनीय विश्वम्भर के दर्शनीय अग्नि को तुम्हें सुख के लिये सब कर्मों में प्रथम पूर्व दिशा में स्थापन करते हैं। हे अग्ने! स्तुतियों को सुनने वाले कान जिसका ऐसे और अत्यन्त प्रसिद्ध देवताओं के सम्बन्धी तुम्हें पति पत्नी युगल रूप यजमान वेद वाणी से स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥

— —

भगवद्भक्ति

(ले० श्रीस्वामी भोले बाबा जी)

कथा अम्बरीष की रानी की।

राजा अम्बरीष की कथा में कहा था कि रानी का वर्णन प्रेम निष्ठा में होगा, उसी रानी की कथा कहता हूं। जब यह रानी ब्याही आई और उसने राजा से अलग पूजा और सेवा करने का उपदेश पाया, तो वह अत्यन्त प्रेम और विश्वास से भगवत्मूर्ति विराजमान करके सेवा पूजा करने लगी और उसे भगवत् में इतना प्रेम हुआ कि किसी समय सिवाय भगवद्ध्यान और आराधन के किसी काम में मन नहीं लगती थी, राजा को भी इस वृत्तान्त का समाचार पहुंचा। राजा रानी के

महल में आया और उसने देखा कि रानी को भगवत् में इतना प्रेम है कि साधन व रूपा से सिद्धावस्था के समीप पहुंच गयी है अर्थात् तद्रूपता को प्राप्त हो गई है। कभी अति उमंग से गाती है, कभी नाचती है, कभी हंसती है, कभी रोती है और कभी भगवद्ध्यान में भीति के चित्र के सदृश हो जाती है।

राजा रानी की यह दशा देख कर बहुत ही प्रसन्न हुआ और अपने भाग्य की बड़ाई करता हुआ रानी के पास पहुंचा। रानी तो भगवच्छवि के अनुभव में मग्न होकर शरीर की सुधि भूल गयी थी, इसलिये पहिले तो उसने कुछ बात न पूछी, पीछे बहुत देर पीछे कुछ सुधि हुई तो राजा को देख कर बड़े आदर सत्कार से हाथ जोड़ कर खड़ी हुई, क्योंकि एक तो पति, दूसरे राजा, तीसरे गुरु कि उसके उपदेश से भगवत् सेवा मिला था। पश्चात् दोनों का सत्संग और वार्तालाप हुआ तो और राजा ने भगवच्चरित्रों के कीर्तन की आज्ञा की। रानी ने भगवत् कीर्तन और नृत्य आरंभ किया और ऐसी प्रेम में मग्न हो गई कि अपने और पराये की कुछ सुधि न रही। राजा ने ऐसे प्रेम रस के आनन्द का कभी स्वाद नहीं लिया था, इसलिये अपने भाग्य को धन्य मान कर वह नित्य रानी के सत्संग में रहने लगा और रानी के प्रेम का यह फल हुआ कि राजा का सारा नगर और देश भगवद्भक्त हो गया। सच कहा है—

दो०—भक्त स्वयं भव से तरें तार देंय हैं अन्य।
संग करें जो भक्त का भोगी! सोई धन्य॥

कथा सुतीक्ष्ण की।

अगस्त्य जी के शिष्य सुतीक्ष्ण ऋषीश्वर बड़े प्रेमी रामोपासक थे। जब रघुनन्दन महाराज दण्डकवन में पधारे और सुतीक्ष्ण जी के आश्रम के समीप पहुंचे तो सुतीक्ष्ण जी अपने स्वामी के आगमन का समाचार सुन कर आगे लेने के हेतु चले परन्तु परमानन्द भगवान् के आगमन की और दर्शन की उमंग इतनी हुई कि अपने पराये सब की सुधि भूल गये, जो रूप अनूप चिन्तन में था, उसके सिवाय भीतर और बाहर कुछ दिखाई नहीं पड़ता था। और मैं कौन हूं, कहां हूं? और किधर जा रहा हूं, यह भी कुछ ज्ञात नहीं था! जब कभी सुधि आती तो यह मन में आती थी कि आज कौन सी ऐसी शुभ घड़ी और कौन ऐसा मंगल का दिन है कि जिनका दर्शन ब्रह्मा, शिवादिकों को भी दुर्लभ है, उन स्वामी का दर्शन करूंगा! कभी इस बात पर प्रसन्न होते थे कि मेरे बराबर दूसरा कौन बड़भागी है कि जिसको आज पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्दघन के दर्शन होंगे! बस! ऐसे चिन्तवन और आनन्द में एक डग भी चला न गया! बेबश हो कर मार्ग में बैठ गये और उस ध्यान के स्वरूप में ऐसे लीन हो गये कि जब रघुनन्दन स्वामी, जानकी महारानी और लक्ष्मण जी के सहित आये, तो कुछ जनाई न पड़ी और जब उन्होंने पुकारा तो कुछ न सुना!

ऐसा देख कर रघुनाथ जी ने अपना स्वरूप जो सुतीक्ष्ण के ध्यान में था, अन्तर्धान कर लिया और उनके मन में चतुर्भुज रूप प्रकट किया। जब सुतीक्ष्ण ने अपने स्वामी का वह मनोहर रूप अपने मन में न देखा, तो उन्होंने विकल होकर आंखें खोल दीं और अपने मन भावन को सन्मुख देख कर और अति प्रेम से बेसुधि हो कर चरण पकड़ लिये और न छोड़े! भगवान् ने बल से उनको उठा कर अपनी छाती से लगाया!

पश्चात् भगवान् ऋषि के आश्रम में जाकर

दिये, ऋषीश्वर ने रीति अनुसार पूजन इत्यादि किया और भगवान् की स्तुति करना आरंभ किया, परन्तु प्रेम के कारण से ऐसा स्वरभंग हुआ कि एक अक्षर भी उच्चारण न हो सका। कभी तो आँखों से जल का प्रवाह चलता था, कभी कभी रुक जाता था! जब भगवान् ने ऐसा अपार प्रेम देखा, तो आज्ञा की कि जो इच्छा हो, सो वर माँगो, तुम्हारी समस्त कामनायें पूर्ण होंगी। ऋषीश्वर ने विनय किया कि कौन वस्तु माँगूं? मुझे अच्छे बुरे का ज्ञान नहीं है, जो वस्तु आपको अच्छी लगे, वह दीजिये और यदि मेरे ही माँगने की आवश्यकता है, तो यह माँगता हूं कि जानकी महारानी और लक्ष्मण सहित आपका स्वरूप मेरे मन में सदा निश्चल बसा रहे। भगवान् ने यह ही वरदान दिया। प्रभात को जब रघुनाथ जी आगे चलने लगे, तो सुतीक्ष्ण जी वियोग को न सह सके, अपने गुरु अगस्त्य जी के दर्शन के बहाने से साथ चले और उसी परमानन्द के समुद्र में मग्न रहे।

दो०—गाथा भक्त सुतीक्ष्ण की, शिक्षा यह हो देय।
इष्टदेव ही सब है, इष्टदेव ही ध्येय॥

कथा शबरी की।

शबरी भीलनी की महिमा किस प्रकार वर्णन हो सकती है। बड़े २ ऋषीश्वर जिसकी भक्ति को देख कर प्रसन्न हो गये। प्रथम जब शबरी के हृदय में भगवद्भक्ति उत्पन्न हुई तो वह साधु सेवा करने लगी। दण्डकारण्य में पंपासर के समीप मतंग आदि ऋषियों के आश्रम में रात्रि के समय छुप कर लकड़ियों का भार डाल जाती थी और रात रहकर जिस मार्ग से ऋषीश्वर स्नान करने को आया जाया करते थे, उस मार्ग को झाड़ बुहार कर शुद्ध कर देती थी। मतंग ऋषीश्वर अपने मन में कहा करते कि ऐसा कौन बड़भागी है कि ऐसी सेवा करता है और हमारे तप और भजन में से भाग लेने वाला होता है।

एक दिन रात को दश बीस ऋषीश्वर छुपके छुपकर लगे रहे और जब शबरी आयी, तो उसे पकड़ कर मतंग जी के पास ले गये। शबरी ऋषीश्वर के डर से कांपने लगी और जब उनके सामने गयी, तो रोदन करने के दुःख से और भय से कुछ विनय न कर सकी! कई ऋषीश्वरों के मन में यह बात आयी कि इस नीच जाति की लायी हुई लकड़ियों, जो हमने अपने उपयोग में लाई हैं, तो न मालूम किस पाप में पकड़े जायेंगे? मतंग ऋषीश्वर जी भक्ति के प्रभाव को जानते थे, अपने मन में कहने लगे कि यह शबरी ऐसी पवित्र और शुद्ध है कि जिसके ऊपर करोड़ों ब्राह्मणों के धर्म कर्म निछावर करने उचित हैं। ऐसा विचार कर मतंग ऋषीश्वर उसको अपने आश्रम में ले गये और उन्होंने उसे भगवन्मन्त्र का उपदेश किया और जब वे परम धाम को जाने लगे, तो शबरी को शिक्षा दे गये कि पूर्ण ब्रह्म श्रीरघुनन्दन स्वामी यहां आवेंगे, तुझे उनके दर्शन होंगे, तू इसी आश्रम में रहा कर, इतना कह कर मतंग जी परम धाम को चले गये।

शबरी को गुरु के वियोग से अत्यन्त शोक हुआ परन्तु भगवान् के दर्शनों की आशा से प्रसन्न होकर वह भजन और ध्यान में रहने लगी। जिस घाट पर ऋषीश्वर स्नान करने जाया करते थे, उसके मार्ग को शबरी बुहारी दिया करती थी। एक दिन नियत समय में विलम्ब हो गया, ऋषीश्वरों ने उसे देख कर, क्रोध किया और उसी क्रोध में ऋषीश्वरों का वस्त्र शबरी से छू गया, तो वे बहुत ही क्रोध करने लगे और शबरी को कठोर वचन—

कह कर फिर स्नान करने गये, तो क्या देखा कि तड़ाग जल के बदले रुधिर से भरा हुआ है और उसमें बड़े २ कीड़े भी देखने में आये। अपनी मलीनता से ऋषीश्वरों की समझ में यह आया कि शबरी की अपवित्रता से तड़ाग का जल बिगड़ गया है, ऐसा विचार कर ऋषीश्वर अपनी कुटी पर चले गये और शबरी अपने स्थान पर लौट गयी।

पश्चात् शबरी रघुनन्दन स्वामी के आने की बाट देखने लगी और उनके निमित्त प्रसाद ढूँढने लगी, अच्छे २ बेर तोड़ कर पहिले आप चखती कि ये मीठे हैं या खट्टे, यदि मीठे होते, तो रख लिया करती और खट्टे होते तो फेंक दिया करती! जिस मार्ग से भगवान् आने वाले थे, उस मार्ग पर जाकर उनकी बाट देखा करती, जब अपनी कुरूपता और जाति की नीचता को विचारती, तो किसी जगह झाड़ी में छुप जाती और जब अपने गुरु के वचन और भगवत् की कृपालुता और पतित पावनता पर दृष्टि करती, तो आगे लेने के हेतु दौड़ती। इस प्रकार भगवत् के प्रेम और चिन्तवन में दिन रात व्यतीत करती।

बहुत दिन पीछे अधमोद्धारण भक्तवत्सल महाराज पधारे और लोगों से बड़ी चाह से पूछने लगे कि परमभक्ता शबरी का स्थान कहां है? जब भगवान् स्थान के समीप आये तो शबरी ने साष्टांग दण्डवत् की। रघुनन्दन स्वामी ने लपक कर उसे धरती से उठा लिया और वियोग का समस्त शोक दूर कर दिया। शबरी की यह दशा हुई कि भगवान् के मुखचन्द्र की चकोर हो गयी और दर्शन में मग्न होकर निर्भर परमानन्द का जल आंखों से बहा बहा कर उसने भगवान् के चरणों को तर कर दिया।

पश्चात् शबरी भगवान् को अपने आश्रम में ले गई और जंगल से लाये हुए बेर उसने भगवान् के निमित्त आगे धरे। भक्तपावन महाराज तो उन बेरों का भोजन करने लगे और शिव ब्रह्मा आदि देवता उस भक्तवत्सलता और कृपालुता के प्रेम में मग्न होकर शबरी के भाग्य की बड़ाई करने लगे। भगवत् एक बेर उठावें, मुख में डाल कर उसकी मधुरता की श्लाघा करें कि ऐसा मीठा फल हमने कभी नहीं खाया, फिर दूसरा उठावें और उसी भांति गुण वर्णन करके भोजन करें! इस प्रकार बहुत देर तक भगवान् ने प्रशंसा करके बड़े प्रेम से भीलनी के बेर खाये!

शबरी के घर में आकर भगवान् उतरे हैं, यह समाचार सुन कर सब ऋषीश्वर बड़े अचम्भे में रह गये और सब अपने धर्म, कर्म, कुलीनता का गर्व विदा करके शबरी के आश्रम में रघुनन्दन स्वामी के दर्शनों को आये और भगवत् दर्शनों से कृतार्थ होकर परमानन्द को प्राप्त हुए, बात चीत होने के पीछे ऋषीश्वरों ने तड़ाग के जल बिगड़ जाने का वृत्तान्त कहा और उसके निर्मल होने का उपाय भगवान से पूछा। भगवान् ने कहा कि जब शबरी के परम पावन चरण उस तड़ाग में पड़ेंगे, तो उसी क्षण उसका जल शुद्ध और निर्मल हो जायगा। ऋषीश्वर शबरी से विनय और प्रार्थना करके उसे तड़ाग पर ले गये और उस परम भक्ता के चरणों के पड़ते ही तड़ाग का जल भगवद्भक्तों के मन के समान निर्मल हो गया।

पीछे भगवान् ने आगे जाने को शबरी से विदा मांगी और आज्ञा की कि भक्ति का जो उपदेश हमने दिया है, उसी प्रकार आगे आगे आचरण करती रहना। शबरी की आंखों में वह परम मनोहर रूप समा गया था, वह भगवान् का वियोग न सह सकी, विदा मांगते ही अपने प्राण निछावर करके

परम धाम को विदा होगई ! भगवत् ने उसका दाह कर्म आप किया और इस चरित्र से आवागमनसे छुट्टी चाहने वालों को भक्ति करने की शिक्षा दी । हे मंसाराम ! निश्चय प्रेम की अन्त पदवी यह ही है कि अपने प्यारे के मिलने के अति आनन्द में अथवा वियोग के अति शोक में आसक्त हो अर्थात् स्नेह करने वाले के प्राण तुरन्त चले जाते हैं ।

दो०—सच्चा प्रेमी इष्ट का सहना सकै वियोग ।
मंसा ! जाने मर्म यह, सच्चे प्रेमी लोग ॥

कथा विदुर और उनकी स्त्री की ।

विदुर जी और उनकी धर्मपत्नी दोनों परम भक्त थे । विदुर जी धर्म का अवतार थे, मांडव्य ऋषीश्वर के शाप से इन्होंने मनुष्य देह पाई थी । इनकी कथा महाभारत में विस्तार से लिखा है । भगवत् में विदुर जी की जितनी प्रीति थी, उससे अधिक उनकी धर्मपत्नी की थी । जब श्रीकृष्ण भगवान् कौरव और पांडवों का विरोध मिटाने के लिये हस्तिनापुर में गये, तो दुर्योधन ने अपने ऐश्वर्य के गर्व से सन्धि अंगीकार नहीं की परन्तु शिष्टाचार के हेतु भोजन के निमित्त विनय किया । भगवत् ने कहा कि बिराने घर तीन भांति से भोजन किया जाता है, एक तो कंगालता से, दूसरे प्रेम के सम्बन्ध से और तीसरे हरि भक्ति से यहां इन तीनों बातों में से एक भी नहीं है, यह कह कर भगवान् विदुर जी के घर पधारे ।

जब भगवान् वहां पहुंचे, तो विदुर जी घर पर नहीं थे, और उनकी स्त्री स्नान कर रही थी, जब स्त्री ने भक्तवत्सल महाराज का आगमन सुना, तो वह हर्ष के मारे अंगों में न समाई और प्रेम और आनन्द में ऐसी मग्न हो गयी कि बेधड़क उस नग्न दशा में ही उठ दौड़ी । लज्जा रखने वाले महाराज उसकी यह दशा देख कर चकित हो गये और उन्होंने अपने श्रीअंग का पीताम्बर झट से उढ़ा दिया । हे मंसाराम ! ऐसा अनुमान होता है कि भगवत् को उस समय यह विचार हुआ होगा कि यह मेरी तद्रूपता को तो पहुंच ही गयी है, केवल पीताम्बर ही नहीं है, इसलिये पीताम्बर उढ़ा देना चाहिये, अथवा ऐसा समझ में आता है कि जब कोई राजा अपने किसी प्यारे सेवक पर प्रसन्न होता है, तो अपनी पोशाक उसको प्रदान कर देता है, इसलिये भगवत्महाराजाधिराज मणि ने उसके प्रेम से प्रसन्न होकर अपना पीताम्बर उसे प्रदान कर दिया अथवा कदाचित् भगवान् के मन में ऐसा आया हो कि जब कोई राजा की सेवा में जाता है, तो कुछ भेट ले जाता है, भगवत् ने विदुर पत्नी को अपूर्व प्रेमियों में राजा के सदृश विचार कर अपना पीताम्बर भेट दिया हो ।

पश्चात् विदुर पत्नी भगवत् को अपने घर में ले आयी और परम प्रीति से भगवत् को सिंहासन पर बैठा कर अत्यन्त प्रेम और आनन्द में बेसुधि हो गयी । कृपा विधु ने जब उसकी ऐसी दशा देखी, तो अपनी ओर वार्तालाप में लगाने के निमित्त आज्ञा की कि कुछ भोजन तैयार हो, तो लाओ ! वह बड़भागिनी केले फल ले आई और पास बैठ कर खिलाने लगी । वह तो परमानन्द में पूर्ण थी, गिरी तो धरती पर फेंक दे और छिलका भोजन को दे दे ! विश्वम्भर महाराज तो केवल प्रेम के भूखे हैं, छिलकों को सराह २ कर खाने लगे । इतने ही में विदुर जी आ गये और भगवत् के चरण कमलों को दण्डवत् करके स्त्री को डाटने लगे कि अरी मन्दबुद्धी ! यह क्या कर रही है ! फलों के बदले छिलके खिला रही है । इतना कह कर विदुर जी आप छिलके निकाल कर फलों

भगवान् को खिलाने लगे। भक्त चित्तरंजन महाराज कहने लगे कि हे विदुर जी! इन केलों का गूदा बहुत मीठा है फिर भी उन छिलकों के स्वाद को नहीं पहुंचता।

हे मंत्रीराम! इस वचन से भगवान् अपने भक्तों को शिक्षा करते हैं कि जिस किसी को जितनी प्रीति और भक्ति मेरे चरणों में है, इतनी ही भक्ति से मैं उनके दिये हुए पदार्थों को अंगीकार करता हूं। दूसरे भगवान् यह बात जनाते हैं कि मेरे दरबार में चतुराई इत्यादि की कुछ नहीं चलती, केवल स्नेह और प्रेम पर मेरी रीझ है। एक अर्थ और भी निकलता है कि विदुर जी और उनकी स्त्री को छिलके खिलाने का जो शोच हुआ था वह भी उनका निकल गया और दोनों परम प्रीति से भगवत् की सेवा में तत्पर रहे।

कुः—ईश्वर भोगन हित भजे, ईश्वर देता भोग।
ईश्वर हित ईश्वर भजे, ईश्वर दे निज योग॥
ईश्वर दे निज योग, आप सा ही कर लेता।
जन्म मरण दे मेट, शान्त शाश्वत पद देता॥
भोला! मत भज देह, दुःख दायक अरु नश्वर।
सब की आशा छोड़, प्रेम से भजले ईश्वर॥

कथा भक्तदास की।

राजा भक्तदास, जिन का कुलशेखर पद है, प्रेमीभगवद्भक्त थे। उनके प्रेम और भक्ति की कथा प्रपन्नामृत ग्रन्थ में विस्तार से लिखी है, यहां मूल भक्तमाल के अनुसार संक्षेप से लिखी जाती है। यह राजा श्रीरंगनन्दन स्वामी के उपासक थे, उन्हीं के चरित्र सर्वदा सुना करते थे और भगवत् की लीला और उत्साह अति प्रेम और प्रीति से नित्य नये भाव से किया करते थे। कथा सुनाने वाला ब्राह्मण राजा के प्रेम का वृत्तान्त जानता था, जब रामायण में सीताहरण की कथा आया करती, तो छोड़ दिया करता था, एक बार ब्राह्मण बीमार हो गया, उसका बेटा कथा सुनने को आया। दैवयोग से उसने वही कथा सुनायी कि रावण आया और जानकी महारानी को चुरा कर ले गया। इतना सुनते ही राजा तलवार खींच कर मार! मार! करता हुआ दौड़ा और घोड़े पर सवार होकर लंका की ओर चला कि इसी घड़ी रावण को मार कर अपनी माता के दर्शन करूंगा, मेरे जीते जी मेरी माता को रावण कैसे ले जा सका है। जब मार्ग में समुद्र आया, तो राजा ने निर्भय होकर घोड़ा समुद्र में डाल दिया। भक्तभावन और भक्तमनरंजन महाराज जानकी महारानी और लक्ष्मण जी सहित प्रकट हो कर कहने लगे कि कुलशेखर! कहां जाते हो, रावण को तो हमने मार दिया, जनकनन्दनी सहित अयोध्या को जा रहे हैं! राजा चरणों में पड़ा, युगल स्वरूप के दर्शन करके नये, प्राण पाये, अपना राजधानी में आकर प्रेम भक्ति में मग्न रहने लगे।

दो०—भक्त करे जो भावना, वैसा बनता ईश।
नर तनु धरि लीला करे, भक्त हेतु जगदीश॥

कथा विट्ठलदास की।

विट्ठलदास जी माथुर चौबे अमागी, दूसरों को मान देने वाले, सब प्रकार से निर्मल और परोपकारी थे। किसी के अवगुणों पर इनकी दृष्टि नहीं जाती थी, जो गुण जिस में होता था, उसका वर्णन करते थे, माला, तिलक भगवद्भक्तों की महिमा और भगवत् प्रेम बुद्धि में समाया हुआ था, 'हरिगोविन्द हरिगोविन्द'। यह शब्द अनुक्षण जिह्वा पर रहते थे। इनके बाप के दो सगे भाई राना के पुरोहित थे। जब विट्ठलदास लड़के ही थे, तभी

दोनों भाई परस्पर लड़कर मर गये। जब विट्ठलदास जी सयाने हुए, तो इन्होंने भगवद्भक्ति अंगीकार की और राजा के पास आना जाना छोड़ दिया।

एक दिन राजा ने लोगों से पूछा कि हमारे पुरोहित का लड़का नहीं आता, वह कहां है, उसे शीघ्र जाकर ले आओ। राजा के बुलाने पर विट्ठलदास जी न गये, जब राजा दुबारा बुलाने लगे, तो शत्रुओं ने कहा कि महाराज! वह तो दिन रात वैरागियों के संग में रहता है और अपने आपको भक्तों में गिनता है। यह सुन कर राजा ने विट्ठलदास जी को कहला भेजा कि आज हमारे यहां जागरण है, इसलिये हमारे घर में जागरण करना। विट्ठलदास जी हरिभक्तों की समाज सहित गये। राजा ने सब का आदर सत्कार किया और समाज के निमित्त तिखने मकान की छत पर फर्श बिछवा दिया। जिस समय भगवच्चरित्रों का कीर्तन और भजन होने लगा, तो विट्ठलदास जी उन चरित्रों के रस में बेसुधि हो गये और अपने पराये को भूल कर आप कीर्तन करने लगे और नृत्य और गान की दशा में उन्हें अपने शरीर और मकान की कुछ सुधि न रही और वे तिमंजले मकान से नीचे गिर पड़े! राजा यह दशा देख कर बड़े शोक में हुआ और दुष्ट लोगों का बहुत तर्जना भर्त्सना करने लगा।

साधु संग विट्ठलदास जी को उठा कर घर पर ले आये। तीन दिन पीछे विट्ठलदास जी को चेत हुआ। उनकी माता ने राजा की परीक्षा लेने का दुष्टों की दुष्टता का और तिमहले पर फर्श होने का सब कारण कहा। विट्ठलदास जी रात्रि को अपने घर से चल दिये और टोडरा गांव में कि जहाँ यशोदा जी ने श्रीमदनमोहन महाराज की छठी उत्सव किया था, आकर श्रीमदन गोविन्द की सेवा पूजा में लग गये। राजा के सेवक सर्वत्र उन को ढूँढ आये, परन्तु कहीं उनका पता न लगा। उनकी माता ने उनको ढूँढ कर, उनसे घर चलने को बहुत कहा और अनेक उपाय किये परन्तु विट्ठलदास जी का मन श्रीमदनगोविन्द महाराज की सेवा और उनके स्वरूप में लिपट गया था, इसलिये माता का किया हुआ कोई यत्न काम न आया, हारकर के उनकी माता और स्त्री दोनों उसी गाँव में रहने लगीं।

कुछ दिन पीछे विट्ठलदास जी बहुत बीमार हुए और भगवान् ने स्वप्न में आज्ञा करी कि तुम मथुरा जी में निवास करो। विट्ठलदास जी को मदनगोविन्द महाराज का वियोग अंगीकार न हुआ परन्तु जब तीन दिन तक भगवान् ने आज्ञा करी, तब वे परवश हो कर मथुरा जी में आये और वहाँ उन्होंने देखा कि उनके सजाति भगवद्भक्त से विरुद्ध हैं, इसलिये वे एक बढ़ई साधु के घर उतरे। उनकी परम सती स्त्री गर्भवती थी, उसको सब की चिन्ता हुई। भगवान् ने मिट्टी खोदने में बहुत धन सहित अपनी एक मूर्ति प्रकट कर दी। विट्ठलदास जी धन सहित मूर्ति बढ़ई को देने लगे परन्तु उसने हाथ जोड़ कर चरण पकड़ लिये और विनय करने लगा कि आप भगवान् की सेवा करें और रुपया भी अपने खर्च में लगावें।

विट्ठलदास जी ने ऐसी प्रीति से सेवा आरम्भ की कि सिवाय सेवा पूजा के अन्य किसी कार्य से सम्बन्ध न रक्खा। थोड़े ही दिनों में उनके भक्ति भाव की ऐसी ख्याति हुई कि बहुत लोग उनके शिष्य हो गये। भगवत् उत्साह और कीर्तन का ऐसा समाज रहने लगा कि मानों भगवत्पार्षदों का समाज है। संयोग वश एक दिन एक वहमी का

गयी और उसने भगवत् के आगे नृत्य और गान किया। विट्ठलदास जी भगवत्प्रेम में ऐसे बेसुधि हो गये कि जो गहने और वस्त्रादिक थे, प्रसन्न होकर सब उसको दान कर दिये और जब उनको भी कम जाना तो अपने पुत्र रंगीराय को भगवत् के ऊपर निछावर करके दे दिया।

राना की लड़की रंगीराय की चेली थी, उसने उस नटनी से कहला भेजा कि जितना आभूषण और रुपया तुझे चाहिये, मुझ से लेजा और मेरे गुरु रंगीराय को मुझे दे दे। नटनी ने उत्तर दिया कि सम्पत्ति की कुछ परवाह नहीं है परन्तु रीझ कर तन, मन और धन सब दे सकती हूं। राना की लड़की ने विट्ठलदास जी से विनय और प्रार्थना करके फिर समाज कराया और जो गुणी और भक्तजन आये थे, उनको बहुत रुपया भेंट दिया और आप भगवत् के सामने नृत्य करने लगी। उसके नृत्य को देख कर नटनी भी चकित हो गयी और रंगीराय जी का शृंगार करके और डोले में बैठा कर भगवत् के समुख लाई। उस नटनी के कहने से रंगीराय जी नृत्य करने लगे। उसके नृत्य को देख कर सब समाज भगवत्प्रेम में बेसुधि हो गया और नटनी ने रंगीराय जी सहित सब धन सम्पत्ति भगवत् के भेंट कर दी।

रंगीराय जी ने विट्ठलदास जी से कहा कि आप मुझको भगवत् को निछावर कर चुके हैं आप को उचित नहीं है कि मुझे फेर लें। विट्ठलदास जी ने रंगीराय जी न लिया परन्तु राना की लड़की ने उनको ले लिया। रंगीराय जी ने विचारा कि यद्यपि तन भगवत् की निछावर हो गया है परन्तु प्राण अब तक निछावर नहीं हुए, ऐसा विचार कर वे पाँच भौतिक शरीर छोड़ कर भगवत् के परम धाम को प्राप्त हो गये। भगवत् के रसिकों और प्रेमियों को यह पवित्र भगवद्भक्ति देने वाला है और विचार के योग्य है।

दो०-सच्चा भक्त महेश में, तन मन देय लगाय।
विरला प्रेमी भक्त हो, देता प्राण चढ़ाय॥

कथा कृष्णदास जी की।

कृष्णदास जी भगवत् के परम भक्त थे। श्रीनन्दनन्दन महाराज ने कृपा करके इनको अपने चरणकमलों का नूपुर दिया था। भगवत् कीर्तन की रीतियों को यह भली प्रकार जानते थे। स्वरताल, ग्राम, मूर्च्छना इत्यादि जो कुछ संगीत रत्नाकर आदि ग्रन्थों में लिखे हैं, इन सब का जानने वाला इनके समान इनके समय में कोई न था। इनके गान की अन्तता यहां तक हुई कि इन्होंने राधिका बल्लभ महाराज को भी अपने प्रेम और गुण से प्रसन्न करके रिझा लिया! यह जाति के सुनार थे और इनके बाप का नाम खरगसेन था।

एक दिन यह श्रीराधाकृष्ण महाराज की सेवा पूजा करके भगवत् के सामने नृत्य और गान करने लगे और भगवत् के रूप और चरित्रों के चिन्तवन के रस में ऐसे मग्न और बेसुधि हो गये कि शरीर का कुछ भान न रहा। उसी दशा में एक पांव का घुँघरु खुलकर गिर पड़ा और समाज जो जम रहा था, उसमें विक्षेप होने लगा। परम रिझवार श्रीरसिक बिहारी उस सभा और ताल के भंग को बे शोभा समझ कर उठे और उन्होंने अपने चरण कमल का नूपुर श्रीहस्त से कृष्णदास जी के चरण में पहिना दिया।

कृष्णदास जी ने नृत्य और कीर्तन के पीछे जब यह वृत्तान्त जाना, तो भगवत् की कृपा और अपने भाग्य को धन्य मान कर वे फिर आनन्द में मग्न हो गये और भगवद्भजन में ऐसे लीन हुए कि

दिन रात उसी प्रेम की दशा में बेसुधि रहने लगे। यह साधु सेवी ऐसे थे कि हरिभक्तों को कभी भगवत् से न्यून नहीं जानते थे।

मंसाराम-महाराज! भगवत् ने अपना घुघुंरू क्यों पहिनाया, वही घुघुंरू क्यों नहीं सजा दिया।

मलूकराम-भाई! यदि वह ही घुंघुरू सजा के पहिनाते, तो विलम्ब होता, इसलिये अपना घुंघरू पहिना दिया और भक्त के मन में अपनी रिझवारता और चित्त की चाह प्रकट कर दी, सिवाय इसके यह भी सूचित होता है कि भगवत् ने रीझ कर अपना घुंघुरू इनाम दिया।

दो०-रीझत भगवत् भक्त पे, करते उसका काम।
कृष्णदास पे रीझके, घुंघुरू दिया इनाम॥

कथा कात्यायिनी जी की।

कात्यायिनी जी के प्रेम और भक्ति की कथा किससे कही जाय। ब्रजगोपिकाओं को श्रीब्रजराज भूषण महाराज में जितना प्रेम और स्नेह था, उतना ही कात्यायिनी जी को था, बात कहते २ भगवत् के रूप का चिन्तवन करके बेसुधि हो जाती थीं, तनक सुधि नहीं रहती थी। जगत् के जितने झगड़े बखेड़े हैं, उन से दूर, भगवत् के प्रेम में चूर, भगवत् के प्रेम की मूर्ति थी। सब भगवद्भक्तों का सम्मत इस बात पर है कि भगवत का स्नेह कात्यायिनी जी पर समाप्त है। इनके प्रेम की यह दशा थी कि राह चलने में भगवच्चरित्रों के तन्मय हो जाती थीं, कभी गाती थीं, कभी रोती थीं, कभी हंसती थी।

एक बार यह भगवच्चरित्रों के कीर्तन में बेसुधि और मग्न थीं, पवन तेज चलने के कारण से वृक्षों में से शब्द आने लगा, कात्यायिनी जी समझीं कि ये लोग कोई तालमृदंग बजाने वाले हैं, मैं जो भगवत् के सन्मुख गाती हूं, तो ये बाजा बजाते हैं, इसलिये इनको कुछ इनाम देना चाहिये। ऐसा विचार कर अपने सब वस्त्रों को इन्होंने प्रसन्न होकर दान कर दिया और आप प्रिया प्रियतम के प्रेम में बेसुधि और मग्न हो गयीं।

दो०-प्रेमी देखे बहुत से, एक २ से बाढ़।
कात्यायिनि जैसा कहीं, देखा प्रेम न गाढ़॥

आदर्श स्त्री जीवन

गतांक से आगे

(ले० श्रीमती ब्रज कुमारी 'प्रभाकर")

जो स्त्री ब्रह्मचारिणी रहती है उनका यह धर्म है कि अपने ब्रह्मचर्य्य का पालन करे, विद्या पढ़े पढ़ावे, अपने तन मनन धन से धर्म का प्रचार करे, अपने तन मन धन को देश की उन्नति के लिये समर्पण कर देवे। सुलभा गार्गी सदृश संन्यासिनी व ब्रह्मवादिनी होना चाहिये। आज इस कलिकाल में स्त्रियें गिरी हुई हैं इनका उद्धार होना चाहिये तब ही भारत का उद्धार हो सकेगा जैसे कि एक पहिये से गाड़ी नहीं चल सकी ठीक उसी तरह यह भारत भी गाड़ी है, स्त्री पुरुष दो पहिये हैं। एक पहिया इसका नीचे गिर गया तब कैसे यह चल सके स्त्री का उद्धार होना पहिले इसलिये जरूरी है कि जब स्त्री यदि विद्वान, सुशिक्षिता होंगी तो सन्तान भी शिक्षिता हो जायेंगी क्योंकि सन्तान के ऊपर मां का प्रभाव पड़ता है जैसे कि देखिये पूर्वकाल में मन्दालसा ने अपने सातों पुत्रों को ब्रह्मज्ञानी बना-दिया था पिता की इच्छा सब को ब्रह्मज्ञानी बनाने

की न थी मगर माता के असर पड़ने से सातों को आत्मज्ञान हो गया मंदालसा अपने पुत्र को इस श्लोक की लोरी दिया करती थी।

शुद्धोऽसि बुद्धोसि निरंजनोऽसि।
संसार माया परिवर्जितोऽसि ॥
संसार स्वप्नं त्यज मोहनिद्रां।
मन्दालसा वाक्यमुवाच पुत्रम् ॥

अर्थात्—हे पुत्र! तू शुद्ध है, बुद्ध है, निरंजन है, संसार की जो माया है उसको तू त्याग दे, संसार स्वप्नवत् है मोह रूपी निन्द्रा को त्याग। और देखिये सुनीति ने अपने प्रिय पुत्र ध्रुव को शिक्षा दी थी जब कि ध्रुव अपने पिता उत्तानपाद की गोद में बैठा था उस समय वहां पर सुरुचि ध्रुव की सौतेली मां आ पहुंची और उत्तानपाद की गोदी से ध्रुव उतार दिया और कहा तू गोद में बैठने लायक नहीं यदि तू गोद में बैठना चाहता था तो मेरी कोख से जन्म क्यों न लिया, तेरी मां भिखारिणी है इत्यादि कटु वचन कहे। तब ध्रुव रोता २ अपनी माता के पास आया तब उसने उपदेश किया कि हे ध्रुव! दुःखी मत हो हम अपने किये हुये का फल भोगते हैं। यदि तू सुख शान्ति चाहता है तो सर्व व्यापी ईश्वर है उसकी आराधना कर। वोह सब का पिता है, तू उसकी शरण में जा। ध्रुव ने पूछा मां वह कहां है तब उसने कहा पुत्र वह "सर्वव्यापी" अर्थात् सब जगह है ध्रुव के माता का उपदेश लग गया और पक्का विश्वास हो गया, भगवान् को प्राप्त करने के निमित्त चला गया। सुनीति तुम्हें बारम्बार धन्यवाद है कि पुत्र को उत्तम उपदेश किया। विदुला नामक एक राजकन्या हो चुकी है जिसने पुत्र को उत्तम उपदेश देकर युद्ध स्थल में भेजा था और कीर्त्ति को स्थापित किया। उसका पुत्र जिस समय कायरता से युद्ध से मुख मोड़ कर घर पर आकर मोह की निन्द्रा में सो गया तब विदुला कहती है:-

शत्रुर्निमज्जता ग्राह्यो जंघायां प्रपितिष्यता।
विपरिच्छिन्न मूलोऽपि न विषीदेत कथञ्चन: ॥

अर्थात् हे पुत्र! निमग्न-पतित ही होना हो तो वीर पुरुषों का कर्त्तव्य यही है कि शत्रुओं की जंघा पकड़ उनको साथ ही लेकर गिरे। जड़ मूल से उखड़ जाने पर भी विषाद् युक्त भग्नोद्यम नहीं होना चाहिये। हे पुत्र! तू मेरा पुत्र नहीं और न तू अपने पिता का। पुत्र! तू अपने पिता का नाम लज्जित न कर। हे पुत्र! जो मनुष्य अपने जीवन में विद्या, अर्थ, वीरता, यश इनमें से किसी को भी प्राप्त न कर सके वह अपनी माता का पुत्र नहीं। विदुला ने अनेक तरह के उपदेश देकर सञ्जय को युद्ध में भेजा था। सुमित्रा देवी का नाम कौन नहीं जानता होगा उसने अपने पुत्र को कैसा पवित्र उपदेश देकर रामचन्द्र जी के साथ वन में जाने को प्रस्तुत किया था और कहती हैं कि:-

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्।
अयोध्यामटवीं विद्धि, गच्छतात यथा सुखम् ॥

अर्थात् हे पुत्र! तू राम को ही पिता जानना, जानकी को ही माता सुमित्रा जानना, वनको अयोध्या जानना। हे पुत्र! जा सुख से जा। और यह भी कहा हे पुत्र! तू राम का बड़ा अनुरागी है इसलिये मैं तुझको उत्तम अनुमति देती हूं, हे पुत्र! तू निष्पाप है जैसा तू आज निष्पाप है ऐसा ही वन से लौटते समय तुझको मैं निष्पाप देखूं। पूर्वकाल में यह सब जननियों का ही ज्ञान का प्रभाव था कि अपने बल बुद्धि से ज्ञान की शिक्षा देकर व उपदेश देकर युद्ध में वनों में जाती थीं।

व्रज की गोपी प्रेम भक्ति से सब से बढ़कर थी। क्योंकि स्वयं भगवान् ने अपने मुखारविन्द

से कहा है कि जैसी मुझे ब्रज की गोपी प्यारी हैं ऐसे मुझे ब्रह्मा शिव प्यारे नहीं हैं।

माता का पुत्रको शिक्षा देने के विषय में नेपोलियन बोना पार्ट का कथन है कि "पहले मां को सुशिक्षिता होना चाहिये मां जब विदुषी होगी तब ही पुत्र विद्वान व सुशिक्षित होंगे।" और नेपोलियन ने यह भी कहा है "कि जब मैं माता के गर्भ में था तब मेरी माता ने बड़ी शूरवीरता कर युद्ध में लड़ कर विजय पाई थी और मेरी माता बचपन में मुझको पुराने लड़ाइयों के इतिहास सुनाया करती थी जिनमें मेरे दिल में युद्ध की उमंगें उठा करती थी। वह बातें मेरे मन में सुदृढ होकर जमगई थी और आज वह शिक्षा फली भूत हो रही है।" नेपोलियन नेफ्रांस जो छिन्न भिन्न हो रहा था उसको सुधार कर उत्तम राज्य स्थापना की थी उसी नेपोलियन की वीरता से भरी हुई कहानी आज पुस्तकों में लिखी हुई हैं। यदि नेपोलियन की मां शिक्षिता न होती तो क्या नेपोलियन ऐसा वीर हो सक्ता था? नहीं यह सब जननियों का ही प्रभाव था कि पुत्र को बुद्धि बल की विलक्षणता से सुयोग्य शिक्षा देती थी। पूर्वकाल में मातायें अपने प्राण प्यारे पुत्रों को धर्म व देशभक्ति के निमित्त बलिदान कर देती थी। धन्य है उन माताओं को जो अपने पुत्रों के प्राणों को धर्म के लिये अर्पित कर देती थी। धन्य है उनको जो स्वयं युद्ध में लड़ कर देश भक्ति के लिये प्राण विसर्जन कर गई और अपनी उज्ज्वल कीर्ति संसार में स्थापित कर गई।

वैकुण्ठ या साकेत

(ले० श्री महावीर प्रसाद जी बजरंगबली 'श्रीवास्तव')

गतांक से आगे।

साथ ही त्रिदेवगत विष्णु का निवासस्थान लीला विभूतिगत 'वैकुण्ठ" सर्व साधारण में प्रसिद्ध है। वेद पुराणों का भी यह प्रसिद्ध विषय है क्यों कि त्रिवेद प्रसिद्ध ही हैं। अतएव इस वैकुण्ठ के लिये ही 'विदित' तथा 'जग जाना' शब्द आसक्ते हैं। इस प्रकार से यहाँ भी 'वैकुण्ठ' शब्द से तात्पर्य लीला विभूति गत वैकुण्ठ से ही है। साथ ही अन्त की चौपाई में जब परम धाम का विषय आ गया है, तब साकेत या वैकुण्ठ कोई शब्द न दे कर पूर्वोक्त नियम के अनुसार यहाँ भी 'मम धाम' शब्द ही दिया है। यदि आद्य की चौपाई में कहे हुये 'वैकुण्ठ' से पर विभूतिगत पर वैकुण्ठ का तात्पर्य्य होता, तो अन्त की चौपाई में शब्द बदलने की आवश्यकता ही क्या थी। 'मम धामदा पुरी सुख रासी' की जगह 'पुर वैकुण्ठा पुरी सुख रासी' लिख सकते थे।

सब पाठकों के विशेष सुविधा के लिये इस प्रसंग की उपरोक्त चौपाइयों की स्पष्ट व्याख्या संक्षेप रूप से कर देना उचित जान पड़ता है। जिससे विषय बिलकुल स्पष्ट हो जायगा। यहाँ पर 'वैकुण्ठ' तथा 'अवध' दोनों ही शब्द लीला विभूतिगत 'वैकुण्ठ' तथा 'अवध या साकेत' के लिये ही आये हैं। 'वैकुण्ठ' के लिये 'बखाना' शब्द इसलिये आया है कि वह 'क्रम मुक्ति' का स्थान है। भगवद्धाम है। सर्व साधारण के लिये आश्चर्य्य जनक तथा दुर्लभ है। अतएव सर्व साधारण वैकुण्ठ का बखान करते ही हैं। पर भगवान उस वैकुण्ठ से

श्री अवध को अधिक प्रिय कहते हैं।

अवध सरिस प्रिय मोहि न सोऊ।
यह प्रसंग जानै कोउ कोऊ॥

यहां प्रसंग के अर्थ पर ध्यान देना उचित है। किसी विशेषता को सिद्ध करने के लिये, युक्ति और प्रमाणों से युक्त विस्तृत व्याख्या का नाम ही प्रसंग है' उस व्याख्या या प्रसंग को प्रभु ने 'जाने कोऊ कोऊ' कह कर गोप्य रक्खा है। पुनः उस व्याख्या या प्रसंग का परिणाम रूप जो विशेषता सिद्ध होती है उसे अन्त की चौपाई में 'ममधामदा' शब्द से स्पष्ट कर दिया है। तात्पर्य्य यह है कि यह मेरी जन्म भूमि 'अवध' 'मम धाम दा' अर्थात् मेरे नित्य धाम (त्रिपाद विभूति गत पर वैकुण्ठ) में यह गुण नहीं है। यही प्रभु को 'श्री अवध' के वैकुण्ठ से भी अधिक प्रिय होने का मुख्य कारण है। अब किस प्रकार से यह गुण श्री अवध में है और वैकुण्ठ में नहीं है? इस बात का दिग्दर्शन कराया जाता है। यह बात प्रसिद्ध है कि कर्म भूमि मर्त्य लोक ही है तथा नर शरीर ही सकल साधनों का धाम है, 'साधन धाम मोक्ष कर द्वारा।' इसी कारण देवता लोग भी भगवत् भक्ति के साधनार्थ नर शरीर की चाह प्रकट करते हुये उसकी सराहना करते हैं 'मनुज देह सुर साधु सराहत सो सनेह सिय पी के' एवं, 'नर समान नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर याचत जेही' इत्यादि। उस साधन धाम नर शरीर से घनिष्ठ सम्बन्ध रखने वाले कर्म भूमि मर्त्य लोक में ही 'श्रीराम जन्म भूमि 'अवध' प्राप्त है। अतएव प्रभु के नित्य धाम की प्राप्ति के साधन में तत्पर श्रीराम भक्तों के लिये श्री अवध का सेवन उनके साधन पथ को अत्यन्त सरल कर देता है। 'पैरत थके थाह जनु पाई' का दृष्टान्त चरितार्थ हो जाता है। इस प्रकार साधन काल में परम सहायक होने से 'अवध' को ही प्रभु ने 'ममधाम दा' अर्थात् 'मेरे धाम को देने वाली' विशेषण दिया है। 'वैकुण्ठ या विष्णु लोक' 'क्रम मुक्ति' का स्थान होने से जीव के लिये साधन काल में सहायक नहीं है। इसी से वैकुण्ठ को 'मम धाम दा' विशेषण प्रभु ने नहीं दिया।

इस प्रकार यहां भी 'वैकुण्ठ' शब्द से तात्पर्य्य लीला विभूतिगत वैकुण्ठ से ही है। नित्य विभूति के लिये 'मम धाम' शब्द ही आया है।

उपरोक्त तीन स्थानों के अतिरिक्त चार जगह और 'वैकुण्ठ' शब्द मानस में आया है। जिनमें से 'देवन्ह समाचार सब पाये। ब्रह्मादिक वैकुण्ठ सिधाये'

बालकांड की चौपाई का स्पष्टी करण संकेत से ऊपर शरभंग जी के प्रसंग की चौपाई 'अस कहि योग अग्नि तनु जारा। राम कृपा वैकुण्ठ सिधारा' की व्याख्या के साथ ही हो चुका है। अन्य तीन स्थलों का क्रमशः स्पष्टी करण किया जाता है।

अति सुन्दर शुचि सुखद सुशीला।
गावहिं वेद जासु यश लीला॥
दूषण रहित सकल गुण रासी।
श्री पति पुर वैकुण्ठ निवासी॥
अस वर तुमहि मिलायउ आनी।
सुनत वचन कह विहँसि भवानी॥

इस प्रसंग में ध्यान पूर्वक देखा जाय कि पार्वती जी का तप लीला विभूति में हो रहा है। न कि त्रिपाद विभूति में। साथ ही पर वैकुण्ठ निवासी' के साथ व्याह कराने का वचन सप्तर्षि पार्वती जी को दे रहे हैं। इतना ही नहीं किन्तु 'मिलायउ आनी' कह कर अपना उस वैकुण्ठ तक बराबर आना जाना भी सूचित करते हैं। जो नित्य धाम के स्वरूप के ही विरुद्ध है, 'यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।' पुनः आगे चल कर उन्हीं

'वैकुण्ठ निवासी' के लिये पार्वती जी ने निम्नलिखित वचन कहा है। यथा–

संभु सकल अवगुण भवन, विष्णु सकल गुण धाम।
जाकर मन रंग जाहि सन, ताहि २ सन काम॥

इस प्रकार के वचन उन्हीं विष्णु के लिये कहे जा सकते हैं जिन का कि शिवजी के साथ किसी रूप में लगभग बराबरी का सम्बन्ध है। और यह बात त्रिदेव गत विष्णु में ही घटित होती है। पर धाम निवासी पर विष्णु या 'श्रीराम' के संबंध में, जिनके लिये स्पष्ट, 'कोटि विष्णु सम पालन कर्ता। रुद्र कोटि शत सम संहर्ता' इत्यादि वचन कहे गये हैं, कदापि ऐसे वचन नहीं कहे जा सकते। अतएव प्रसंग पर विचार करने पर यहां भी वैकुण्ठ शब्द से तात्पर्य त्रिदेव गत विष्णु के 'वैकुण्ठ' से ही है जो विरजा के इसी पार लीला विभूति में है।

बैठे सुर सब करहिं विचारा।
कहं पाइय प्रभु करिये पुकारा॥
पुर बैकुण्ठ जान कह कोई।
कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई॥

इस प्रसंग में सब देवता विचार करते हैं कि प्रभु को कहां पावें? कि उनको अपनी विपत्ति सुनावें। इस पर निज २ मत के अनुसार कोई वैकुण्ठ व कोई क्षीर समुद्र पर चल कर पुकार करने की सम्मति देते हैं। अब विचार करने की बात यह है कि जिस वैकुण्ठ में जा कर देवता लोग भगवान से पुकार कर सकते हैं वह 'वैकुण्ठ लीला विभूति का ही 'वैकुण्ठ' हो सकता है विरजा पार नित्य विभूतिगत पर वैकुण्ठ में देवताओं की गम्य कहां?

राम मनुज कसरे सठ बंगा।
पश्वी काम नदी पुनि गंगा॥
पशु सुर धेनु कल्प तरु रूखा।
अन्न दान अरु रस पीयूषा॥
वैनतेय खग अहि सहसानन।
चिंतामणि पुनि उपल दशानन॥
सुनु मति मन्द लोक वैकुण्ठा।
लाभ कि रघुपति भक्ति अकुण्ठा॥

यहां पर सभी शब्द लीला विभूति के ही सम्बन्ध के हैं उसी प्रकार वैकुण्ठ के लिये भी समझना चाहिये। गंगा सामान्य नदी नहीं, कामधेनु सामन्य पशु नहीं। गरुड़ सामान्य पक्षी नहीं इसी प्रकार वैकुण्ठ के लिये भी 'वैकुण्ठ सामान्य लोक नहीं, किन्तु भगवद्धाम तथा क्रम मुक्ति का स्थान है, यही तात्पर्य्य है। नित्य विभूति गत पर 'वैकुंठ का यहां भी कोई प्रसंग नहीं है।

इस प्रकार मानस में जहां २ वैकुंठ शब्द आया है वहां विरजा के इसी पार के लीला विभूति गत वैकुंठ से ही तात्पर्य्य है पर विभूति के लिये तो मानस में 'राम धाम' पर धाम, मम धाम, निज धाम शब्द ही आये हैं जिन्में किसी प्रकार के विवाद उठाने का अवसर ही नहीं है। अतएव 'राम कृपा वैकुंठ सिधारा' एवं अन्य उपरोक्त किसी भी चौपाई या दोहे का, जहां वैकुंठ शब्द आया है, आश्रय लेकर नित्य विभूति में नित्य धाम साकेत का अभाव सिद्ध करने की चेष्टा, वैष्णव सिद्धांत के सर्वथा विपरीत रामायणी जी की मन्मुखी कल्पना मात्र है। उपरोक्त राम धाम, मम धाम, निज धाम आदि शब्दों में भाविकों की भावनानुसार साकेत वैकुंठ दोनों ही समाते हैं।

श्रीराम चरित मानस में त्रिपाद् विभूति 'पर धाम' का विस्तृत वर्णन करना गोस्वामी जी का अभिप्राय नहीं था। इसी से ग्रन्थ के सांप्रदायिक तथा एक देशी हो जाने की शंका से नित्य विभूति

के सम्बन्ध में वैकुण्ठ, साकेत किसी भी साम्प्रदायिक शब्द का प्रयोग पूज्यपाद गोस्वामी जीने नहीं, किया। रहा लीला विभूति के धामों के सम्बन्ध में 'वैकुण्ठ' तथा 'साकेत' के भी पर्य्याय वाची 'अयोध्या', 'अवध' आदि शब्द दोनों स्पष्ट ही हैं। आगे चल कर अपने 'वैकुण्ठ या साकेत' शीर्षक लेख में रामायणी जी लिखते हैं।'

'ग्रन्थकार को कालिदास या कबीर का अनुयायी होकर किसी मत मतांतर के पक्ष की सिद्धि करना अभीष्ट नहीं था जिनके वाक्यों को लाला जी ने अपने लेख में प्रमाण रूप से रक्खा है। यदि यह स्वीकार होता तो श्रीगोस्वामी जी 'नाना-पुराण निगमागम सम्मत' क्यों कहते ?'

उत्तर-रामायणी जी 'नित्य साकेत धाम' को 'मत मतान्तर का पक्ष' कहते हैं, इतने से ही 'वैष्णव आर्ष ग्रन्थों से परिचित' पाठक वृन्द रामायणी जी के इस कथन को समझ सकते हैं। इस के उत्तर में रामायणी जी को इतना ही स्मरण करा देना पर्य्याप्त है कि 'नित्य साकेत धाम' किसी मत मतांतर का विषय नहीं है। किन्तु 'निगमागम पुराण सम्मत' प्रसिद्ध 'श्रीसम्प्रदाय' के रहस्य ग्रंथों का प्रसिद्ध विषय है। श्रीसम्प्रदाय ही क्या! चारों संप्रदाय के वैष्णव 'नारद पांचरात्रांतर्गत १०८ संहिताओं को अपना मुख्य ग्रन्थ मानते हैं। प्रमाण में श्लोक भी, नित्य धाम साकेत के लिये नारद पंचरात्रांतर्गत वृहत् ब्रह्म संहिता के लेख के प्रारंभ में ही दिये जा चुके हैं। मूल ग्रंथों को देख न सकने के कारण केवल संग्रहीत पुस्तकों से अन्य ग्रन्थों के प्रमाण लिखना उचित नहीं समझा गया। इसी से स्वयं मूल ग्रन्थ को देख कर 'केवल वृहत् ब्रह्म संहिता के श्लोक ही 'साकेत' के सम्बन्ध में प्रमाण में लिखे गये हैं।

अतएव रामायणी जी का स्वयं श्रीरामानुज संप्रदाय के समाश्रय हो कर भी वैष्णव आर्ष ग्रन्थों में प्रसिद्ध नित्य धाम साकेत को 'मत मतांतर का पक्ष' बताना, साथ ही अपनी मनमुखी कल्पना का आरोपण पूज्य पाद गोस्वामी जी में करना बहुत ही हास्यास्पद है।

'वैकुण्ठ या साकेत' शीर्षक लेख की विपरीति युक्तियों का उत्तर लिखा गया। अब उक्त रामायणी जी के चरणों में सादर प्रणाम करता हुआ, तथा अपनी दृढ़ता के लिये क्षमा चाहता हुआ लेख को समाप्त करता हूं।

विश्वास में

(ले० श्री प्रभुदेव ब्रह्मचारी, आश्रम)

योगी करें योग बहु भांति समाधि लावें,
सम करें प्राणों को रोक कर श्वास में।
यती करें यतन लगाय के भभूति तन,
त्याग घर बार रमते हैं बनवास में॥
ज्ञानी कहैं ज्ञान से ही गम्य है अगम्य हरि,
कर्मी बहु कर्म करें इस ही की आस में।
सोचिये विचारिये निहारियेगा मन माहिं,
कहीं पर खोजो प्रभु हैं विश्वास में॥ १॥

योग-साधन

(ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती)

५९४. विहित कर्म्म वह हैं जिनका करना शास्त्र ने उचित ठैराया है जैसे अग्नि होत्रादि पंच महा-यज्ञ। निषिद्ध कर्म्म वह हैं जिनके करने का शास्त्र निषेध करता है जैसे शराब मत पीओ, चोरी न करो।

५९५. उपरति-आत्म ज्ञान प्राप्ति के चार साधनों पर विजय प्राप्त करके सब प्रकार के भोगों को काक विष्टा वत समझ कर त्याग देने का नाम उपरति है। परमात्मा में पूर्ण श्रद्धा और भक्ति होने से ही मोक्ष प्राप्ति सम्भव है।

५९६. मनुष्य दूसरे मनुष्य की सहायता बिना शारीरिक क्रिया को मन द्वारा भी कर सकता है। श्रीकृष्णाश्रम स्वामी, गङ्गा तीर निवासी, रामना महर्षि दक्षिण निवासी और परहंस श्रीस्वामी परमानन्द जी भगवद्भक्ति आश्रम रामपुरा और अन्य ऐसे ही महापुरुष अपनी मानसिक भावनाओं द्वारा संसार की सहायता करते हैं।

५९७. उद्देश की सिद्धि के लिए अनुचित साधनों का प्रयोग मत करो वरन तुमको साधनों का ही विशेष ध्यान रखना चाहिए।

५९८. निर्धन भगवान् के भक्त को भी हरि का समस्त वैभव प्राप्त हो जाता है। हरि की वह निधी संसार के गन्दे धन से कहीं बढ़ कर होती है।

५९९. सब से महान् आत्मा है। यह पर ब्रह्म है, अविनाशी, अजन्मा है, अजर है और अव्यय है। यह एक है, यह ज्ञान और आनन्द की राशी है।

६००. परमात्मा भक्त के लिए बर्फ की भान्ति साकार है, और ज्ञानी के लिए भाप की तरह निराकार है।

६०१. ब्रह्म सूर्य, गङ्गा और आम के वृक्ष की भान्ति है। सूर्य दुष्ट और पवित्र दोनों पर बराबर प्रकाश डालता है। यह दुष्टात्मा और सन्त दोनों ही गङ्गा का जल पी सकते हैं। आम का वृक्ष अपने रक्षक को भी और अपनी डालियें तोड़ने वाले को भी बराबर फल देता है। सूर्य, गंगा और आम के वृक्ष की भान्ति समदृष्टि का विकाश करो।

६०२. दलील (तर्क) सार रहित है और विश्वास सार गर्भित है। कमजोर तर्क मजबूत तर्क से कटजाती है। विश्वास युक्त भक्त ही परमात्मा के अन्तर में प्रवेश पा सकता है। गहन ध्यान में बाह्य संसार और अपने शरीर तक को भूल जाता है।

६०३. कैवल्य ज्ञान ही मोक्ष का उपयुक्त साधन है। ज्ञान विचार द्वारा और महा वाक्यों के ठीक २ अर्थ समझने से ही हो सकता है। 'तत्वमसि' जीवात्मा और परमात्मा के एकत्व को प्रमाणित करता है।

६०४. यद्यपि तुम ज्ञान के जिज्ञासु हो परन्तु जब तक तुमको देहाध्यास है तब तक भक्ति मार्ग का सहारा अवश्य लेना चाहिए।

६०५. हमारी आंखे सूर्य की सहायता के बिना कुछ भी नहीं देख सकतीं। सूर्य्य का प्रकाश स्वयं ज्योति स्वरूप है और आखें भी इसी से प्रकाशित होती हैं, इसी प्रकार आत्मा स्वयं ज्योति स्वरूप है और इसके द्वारा समस्त विश्व, उसके पदार्थ, मन, प्राण और इन्द्रियों को प्रकाशित करता है।

६०६. तुमको किसी अवस्था में भी निराश होने की आवश्यकता नहीं है। तप द्वारा तुम सब कुछ प्राप्त कर सकते हो। गीता के नवें अध्याय के ३१ वें श्लोक में भगवान् बल पूर्वक विश्वास दिलाते

भी अवध को अधिक प्रिय कहते हैं।

अवध सरिस प्रिय मोहि न सोऊ।
यह प्रसंग जानै कोउ कोऊ॥

यहां प्रसंग के अर्थ पर ध्यान देना उचित है। किसी विशेषता को सिद्ध करने के लिये, युक्ति और प्रमाणों से युक्त विस्तृत व्याख्या का नाम ही प्रसंग है' उस व्याख्या या प्रसंग को प्रभु ने 'जाने कोऊ कोऊ' कह कर गोप्य रक्खा है। पुनः उस व्याख्या या प्रसंग का परिणाम रूप जो विशेषता सिद्ध होती है उसे अन्त की चौपाई में 'ममधामदा' शब्द से स्पष्ट कर दिया है। तात्पर्य्य यह है कि यह मेरी जन्म भूमि 'अवध' 'मम धाम दा' अर्थात् मेरे नित्य धाम (त्रिपाद विभूति गत पर वैकुण्ठ) में यह गुण नहीं है। यही प्रभु को 'श्री अवध' के वैकुण्ठ से भी अधिक प्रिय होने का मुख्य कारण है। अब किस प्रकार से यह गुण श्री अवध में है और वैकुण्ठ में नहीं है? इस बात का दिग्दर्शन कराया जाता है। यह बात प्रसिद्ध है कि कर्म भूमि मर्त्य लोक ही है तथा नर शरीर ही सकल साधनों का धाम है, 'साधन धाम मोक्ष कर द्वारा।' इसी कारण देवता लोग भी भगवत् भक्ति के साधनार्थ नर शरीर की चाह प्रकट करते हुये उसकी सराहना करते हैं 'मनुज देह सुर साधु सराहत सो सनेह सिय पी के' एवं, 'नर समान नहिं कवनिहु देही। जीव चराचर याचत जेही' इत्यादि। उस साधन धाम नर शरीर से घनिष्ट सम्बन्ध रखने वाले कर्म भूमि मर्त्य लोक में ही 'श्रीराम जन्म भूमि 'अवध' प्राप्त है। अतएव प्रभु के नित्य धाम की प्राप्ति के साधन में तत्पर श्रीराम भक्तों के लिये श्री अवध का सेवन उनके साधन पथ को अत्यन्त सरल कर देता है। 'पैरत थके था हजनु पाई' का दृष्टान्त चरितार्थ हो जाता है। इस प्रकार साधन काल में परम सहायक होने से 'अवध' को ही प्रभु ने 'ममधाम दा' अर्थात् 'मेरे धाम को देने वाली' विशेषण दिया है। 'वैकुण्ठ या विष्णु लोक' 'क्रम मुक्ति' का स्थान होने से जीव के लिये साधन काल में सहायक नहीं है। इसी से वैकुण्ठ को 'मम धाम दा' विशेषण प्रभु ने नहीं दिया।

इस प्रकार यहां भी 'वैकुण्ठ' शब्द से तात्पर्य्य लीला विभूतिगत वैकुण्ठ से ही है। नित्य विभूति के लिये 'मम धाम' शब्द ही आया है।

उपरोक्त तीन स्थानों के अतिरिक्त चार जगह और 'वैकुण्ठ' शब्द मानस में आया है। जिनमें से 'देवन्ह समाचार सब पाये। ब्रह्मादिक वैकुण्ठ सिधाये'

बालकांड की चौपाई का स्पष्टी करण संकेत से ऊपर शरभंग जी के प्रसंग की चौपाई 'अस कहि योग अग्नि तनु जारा। राम कृपा वैकुण्ठ सिधारा' की व्याख्या के साथ हो ही चुका है। अन्य तीन स्थलों का क्रमशः स्पष्टी करण किया जाता है।

अति सुन्दर शुचि सुखद सुशीला।
गावहिं वेद जासु यश लीला॥
दूषण रहित सकल गुण राशी।
श्री पति पुर वैकुण्ठ निवासी॥
अस वर तुमहिं मिलावउ आनी।
सुनत वचन कह विहंसि भवानी॥

इस प्रसंग में ध्यान पूर्वक देखा जाय कि पार्वती जी का तप लीला विभूति में हो रहा है। न कि त्रिपाद् विभूति में। साथ ही पर वैकुण्ठ निवासी' के साथ व्याह कराने का वचन सप्तर्षि पार्वती जी को दे रहे हैं। इतना ही नहीं किन्तु 'मिलावउ आनी' कह कर अपना उस वैकुण्ठ तक बराबर आना जाना भी सूचित करते हैं। जो नित्य धाम के स्वरूप के ही विरुद्ध है, 'यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।' पुनः आगे चल कर उन्हीं

'वैकुण्ठ निवासी' के लिये पार्वती जी ने निम्न-लिखित वचन कहा है। यथा–

शंभु सकल अवगुण भवन, विष्णु सकल गुण धाम।
जाकर मन रंग जाहि सन, ताहि ते तन काम॥

इस प्रकार के वचन उन्हीं विष्णु के लिये कहे जा सकते हैं जिन का कि शिवजी के साथ किसी रूप में लगभग बराबरी का सम्बन्ध है। और यह बात त्रिदेव गत विष्णु में ही घटित होती है। पर धाम निवासी पर विष्णु या 'श्रीराम' के संबंध में, जिनके लिये स्पष्ट, 'कोटि विष्णु सम पालन कर्ता। रुद्र कोटि शत सम संहर्ता' इत्यादि वचन कहे गये हैं, कदापि ऐसे वचन नहीं कहे जा सकते। अतएव प्रसंग पर विचार करने पर यहां भी वैकुण्ठ शब्द से तात्पर्य्य त्रिदेव गत विष्णु के 'वैकुण्ठ' से ही है जो विरजा के इसी पार लीला विभूति में है।

बैठे सुर सब करहिं विचारा।
कहं पाइय प्रभु करिये पुकारा॥
पुर वैकुण्ठ जान कह कोई।
कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई॥

इस प्रसंग में सब देवता विचार करते हैं कि प्रभु को कहां पावें ? कि उनको अपनी विपत्ति सुनावें। इस पर निज २ मत के अनुसार कोई वैकुण्ठ व कोई क्षीर समुद्र पर चल कर पुकार करने की सम्मति देते हैं। अब विचार करने की बात यह है कि जिस वैकुण्ठ में जा कर देवता लोग भगवान् से पुकार कर सकते हैं वह 'वैकुण्ठ लीला विभूति का ही 'वैकुण्ठ' हो सकता है विरजा पार नित्य विभूतिगत पर वैकुण्ठ में देवताओं की गम्य कहां ?

राम मनुज कसरे सठ बंगा।
धन्वी काम नदी पुनि गंगा॥
पशु सुर धेनु कल्प तरु रूखा।
अन्न दान अरु रस पीयूषा॥
वैनतेय खग अहि सहसानन।
चिंतामणि पुनि उपल दशानन॥
सुनु मति मन्द लोक वैकुण्ठा।
लाभ कि रघुपति भक्ति अकुण्ठा॥

यहां पर सभी शब्द लीला विभूति के ही सम्बन्ध के हैं उसी प्रकार वैकुण्ठ के लिये भी समझना चाहिये। गंगा सामान्य नदी नहीं, कामधेनु सामान्य पशु नहीं। गरुड़ सामान्य पक्षी नहीं इसी प्रकार वैकुण्ठ के लिये भी 'वैकुण्ठ सामान्य लोक नहीं, किन्तु भगवद्धाम तथा क्रम मुक्ति का स्थान है, यही तात्पर्य्य है। नित्य विभूति गत पर 'वैकुंठ का यहां भी कोई प्रसंग नहीं है।

इस प्रकार मानस में जहां २ वैकुंठ शब्द आया है वहां विरजा के इसी पार के लीला विभूति गत वैकुंठ से ही तात्पर्य्य है पर विभूति के लिये तो मानस में 'राम धाम' पर धाम, मम धाम, निज धाम शब्द ही आये हैं जिनमें किसी प्रकार के विवाद उठाने का अवसर ही नहीं है। अतएव 'राम कृपा वैकुंठ सिधारा' एवं अन्य उपरोक्त किसी भी चौपाई या दोहे का, जहां वैकुंठ शब्द आया है, आश्रय लेकर नित्य विभूति में नित्य धाम साकेत का अभाव सिद्ध करने की चेष्टा, वैष्णव सिद्धांत के सर्वथा विपरीत रामायणी जी की मनमुखी कल्पना मात्र है। उपरोक्त राम धाम, मम धाम, निज धाम आदि शब्दों में भाविकों की भावनानुसार साकेत वैकुंठ दोनों ही समाते हैं।

श्रीराम चरित मानस में त्रिपाद् विभूति 'पर धाम' का विस्तृत वर्णन करना गोस्वामी जी का अभिप्राय नहीं था। इसीसे ग्रन्थ के सांप्रदायिक तथा एक देशी हो जाने की शंका से नित्य विभूति

के सम्बन्ध में वैकुण्ठ, साकेत किसी भी साम्प्रदायिक शब्द का प्रयोग पूज्यपाद गोस्वामी जी ने नहीं, किया। रहा लीला विभूति के धामों के सम्बन्ध में 'वैकुण्ठ' तथा 'साकेत' के भी पर्य्याय वाची 'अयोध्या' 'अवध' आदि शब्द दोनों स्पष्ट ही हैं। आगे चल कर अपने 'वैकुण्ठ या साकेत' शीर्षक लेख में रामायणी जी लिखते हैं।'

'ग्रन्थकार को कालिदास या कबीर का अनुयायी होकर किसी मत मतांतर के पक्ष की सिद्धि करना अभीष्ट नहीं था जिनके वाक्यों को लाला जी ने अपने लेख में प्रमाण रूप से रक्खा है। यदि यह स्वीकार होता तो श्रीगोस्वामी जी 'नाना-पुराण निगमागम सम्मत' क्यों कहते ?'

उत्तर—रामायणी जी 'नित्य साकेत धाम' को 'मत मतान्तर का पक्ष' कहते हैं, इतने से ही 'वैष्णव आर्ष ग्रन्थों से परिचित' पाठक वृन्द रामायणी जी के इस कथन को समझ सकते हैं। इस के उत्तर में रामायणी जी को इतना ही स्मरण करा देना पर्य्याप्त है कि 'नित्य साकेत धाम' किसी मत मतांतर का विषय नहीं है। किन्तु 'निगमागम पुराण सम्मत' प्रसिद्ध 'श्रीसम्प्रदाय' के रहस्य ग्रंथों का प्रसिद्ध विषय है। श्रीसम्प्रदाय ही क्या! चारों संप्रदाय के वैष्णव 'नारद पांचरात्रांतर्गत १०८ संहिताओं को अपना मुख्य ग्रन्थ मानते हैं। प्रमाण में श्लोक भी, नित्य धाम साकेत के लिये नारद पंचरात्रांतर्गत बृहत् ब्रह्म संहिता के लेख के प्रारंभ में ही दिये जा चुके हैं। मूल ग्रंथों को देख न सकने के कारण केवल संग्रहीत पुस्तकों से अन्य ग्रन्थों के प्रमाण लिखना उचित नहीं समझा गया। इसी से स्वयं मूल ग्रन्थ को देख कर 'केवल बृहत् ब्रह्म संहिता के श्लोक ही 'साकेत' के सम्बन्ध में प्रमाण में लिखे गये हैं।

अतएव रामायणी जी का स्वयं श्रीरामानुज संप्रदाय के समाश्रय हो कर भी वैष्णव आर्ष ग्रन्थों में प्रसिद्ध नित्य धाम साकेत को 'मत मतांतर का पक्ष' बताना, साथ ही अपनी मनमुखी कल्पना का आरोपण पूज्य पाद गोस्वामी जी में करना बहुत ही हास्यास्पद है।

'वैकुण्ठ या साकेत' शीर्षक लेख की विपरीति युक्तियों का उत्तर लिखा गया। अब उक्त रामायणी जी के चरणों में सादर प्रणाम करता हुआ, तथा अपनी दृढ़ता के लिये क्षमा चाहता हुआ लेख को समाप्त करता हूं।

विश्वास में

(ले० श्री प्रभुदेव ब्रह्मचारी, आश्रम)

योगी करें योग बहु भांति समाधि लावें,
सम करें प्राणों को रोक कर श्वास में।
यती करें यतन लगाय के भभूति तन,
त्याग घर वार रमते हैं वनवास में॥
ज्ञानी कहैं ज्ञान से ही गम्य है अगम्य हरि,
कर्मी बहु कर्म करें इस ही की आस में।
सोचिये विचारिये निहारियेगा मन माहिं,
कहीं पर खोजो प्रभु हैं विश्वास में॥ १॥

योग-साधन

(ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती)

५६४. विहित कर्म्म वह हैं जिनका करना शास्त्र ने उचित ठैराया है जैसे अग्नि होत्रादि पंच महा-यज्ञ। निषिद्ध कर्म्म वह हैं जिनके करने का शास्त्र निषेध करता है जैसे शराब मत पीओ, चोरी न करो।

५६५. उपरति-आत्म ज्ञान प्राप्ति के चार साधनों पर विजय प्राप्त करके सब प्रकार के भोगों को काक विष्टा वत समझ कर त्याग देने का नाम उपरति है। परमात्मा में पूर्ण श्रद्धा और भक्ति होने से ही मोक्ष प्राप्ति सम्भव है।

५६६. मनुष्य दूसरे मनुष्य की सहायता बिना शारीरिक क्रिया की मन द्वारा भी कर सकता है। श्रीकृष्णाश्रम स्वामी, गङ्गा तीर निवासी, रामना महर्षि दक्षिण निवासी और परमहंस श्रीस्वामी परमानन्द जी भगवद्भक्ति आश्रम रामपुरा और अन्य ऐसे ही महापुरुष अपनी मानसिक साधनाओं द्वारा संसार की सहायता करते हैं।

५६७. उद्देश की सिद्धि के लिए अनुचित साधनों का प्रयोग मत करो वरन तुमको साधनों का ही विशेष ध्यान रखना चाहिए।

५६८. निर्धन भगवान् के भक्त को भी हरि का समस्त वैभव प्राप्त हो जाता है। हरि की यह निधी संसार के गन्दे धन से कहीं बढ़ कर होती है।

५६९. सब से महान् आत्मा है। यह पर ब्रह्म है, अविनाशी, अजन्मा है, अजर है और अव्यय है। यह एक है, यह ज्ञान और आनन्द की राशी है।

६००. परमात्मा भक्त के लिए बर्फ की भान्ति साकार है, और ज्ञानी के लिए भाप की तरह निराकार है।

६०१. ब्रह्म सूर्य, गङ्गा और आम के वृक्ष की भान्ति है। सूर्य दुष्ट और पवित्र दोनों पर बराबर प्रकाश डालता है। यह दुष्टात्मा और सन्त दोनों ही गङ्गा का जल पी सकते हैं। आम का वृक्ष अपने रक्षक को भी और अपनी डालियें तोड़ने वाले को भी बराबर फल देता है। सूर्य, गंगा और आम के वृक्ष की भान्ति समदृष्टि का विकाश करो।

६०२. दलील (तर्क) सार रहित है और विश्वास सार गर्भित है। कमज़ोर तर्क मज़बूत तर्क से कटजाती है। विश्वास युक्त भक्त ही परमात्मा के अन्तर में प्रवेश पा सकता है। गहन ध्यान में बाह्य संसार और अपने शरीर तक को भूल जाता है।

६०३. कैवल्य ज्ञान ही मोक्ष का उपयुक्त साधन है। ज्ञान विचार द्वारा और महा वाक्यों के ठीक २ अर्थ समझने से ही हो सकता है। 'तत्वमसि' जीवात्मा और परमात्मा के एकत्व को प्रमाणित करता है।

६०४. यद्यपि तुम ज्ञान के जिज्ञासु हो परन्तु जब तक तुमको देहाध्यास है तब तक भक्ति मार्ग का सहारा अवश्य लेना चाहिए।

६०५. हमारी आंखें सूर्य की सहायता के बिना कुछ भी नहीं देख सकतीं। सूर्य्य का प्रकाश स्वयं ज्योति स्वरूप है और आखें भी इसी से प्रकाशित होती हैं, इसी प्रकार आत्मा स्वयं ज्योति स्वरूप है और इसके द्वारा समस्त विश्व, उसके पदार्थ, मन, प्राण और इन्द्रियों को प्रकाशित करता है।

६०६. तुमको किसी अवस्था में भी निराश होने की आवश्यकता नहीं है। तप द्वारा तुम सब कुछ प्राप्त कर सकते हो। गीता के नवें अध्याय के ३१ वें श्लोक में भगवान् बल पूर्वक विश्वास दिलाते

है "प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति"। तू निश्चय पूर्वक सत्य जान, कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता। सदैव प्रसन्न रहो, जब तुम भगवान् के भक्त हो फिर शोक करने का क्या कारण है? वह अपने भक्त को सब कुछ दे सकता है। अपने साधन में लगे रहो। अपना समय अच्छी तरह खर्च करो। सरल भाव और सत्य व्यवहार आध्यात्मिक उन्नति की बड़ी पूँजी है। तुम्हारा भविष्य उज्वल है, धैर्य पूर्वक आगे बढ़ो बुद्धिमत्ता से काम करो, अपनी दान शक्ति को बढ़ाओ। इससे चित्त बहुत शुद्ध हो जाता है "यज्ञो दान तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।" यज्ञ, दान और तप यह तीनों ही बुद्धिमान पुरुषों को पवित्र करने वाले हैं।

६०७. अय जिज्ञासुओ! यद्यपि तुमको मृत्यु भी प्राप्त हो परन्तु सिवाय रोटी के कुछ मत माँगो। निम्न मनों की मोक्ष नहीं हुआ करती। गरमी, सर्दी, प्यास आदि तितिक्षा करो, सब प्रकार से तितिक्षा को बढ़ाओ। लोग तुमको कितना भी कष्ट देवें प्रसन्नता से सहन करो।

६०८. संसार और उसके पदार्थों से वैराग रक्खो और परमात्मा से और आध्यात्मिक साधनों से प्रेम रक्खो। तुमको कुछ भी ऋद्धि, सिद्धियां प्राप्त हों अपने अध्यात्मिक पथ से कभी विचलित न हो, इनको विष, विष्टा और तृण के तुल्य समझो।

६०९. सदैव अनावश्यक, फिकर और शोक से दूर रहो। किसी प्रकार का खण्डन मत करो। समस्त संसार तुम्हारा विरोध करने पर तुला हुआ है, तुमको समस्त संसार से युद्ध करना होगा। विश्व के विरोध करने पर भी तुम अपने स्थान से इंच भर भी न हिलो। अपने आदर्श और सिद्धान्तों पर अटल रहो।

६१०. यदि तुम एक मिनट भी अध्यात्मिक साधन के बिना रहते हो तो बड़ा पाप है। मन जितना अधिक परमात्मा में लगया जावेगा उतनी ही अधिक शक्ति बढ़ती जावेगी। जितना अधिक तुम संसार की चिन्ताओं और कर्मों से प्रथक् होते जाओगे लोग उतना ही तुमसे अधिक प्रेम करेंगे और तुम्हारा आदर करेंगे।

६११. जब तुम्हारी परमात्मा में पूर्ण भक्ति व प्रेम हो जावेगा तो समस्त संसार तुम्हारे आधीन हो जावेगा।

६१२. यह तो सहल बात है कि मनुष्य किसी का चित्त न दुखावे परन्तु यह बड़ा कठिन काम है कि किसी के शब्दों से मनुष्य का चित्त न दुःखे। जो आदमी बहुत प्रेम से २० वर्ष तक मित्र भाव से रहे हैं उनका भी चित्त एक कड़वे वचन से दुःख जाता है। एक घृणा युक्त हंसी, एक कटाक्ष से भाइयों, मित्रों और सम्बन्धियों में लड़ाई हो जाती है। अहंकार कितना कठोर है, शरीर का अभिमान कितना दृढ है यद्यपि यह नश्वर शरीर हड्डी, मांस, रुधिर, नस नाड़ी आदियों से बना है। यह माया कितनी प्रबल है।

६१३. कुछ भी हो नित्य प्रति साधन अवश्य करना चाहिए। काम के समय भी भाव को निरन्तर स्थिर रखना चाहिए। काम करते समय यह भाव रखना चाहिए कि ईश्वर सर्वत्र व्यापक है और जो कुछ कर्म मैं करता हूं वह सब ईश्वरार्पण है। तुम्हारे हाथ परमात्मा ही के हाथ हैं। राम और कृष्ण तुम्हारे द्वारा ही देखते, सुनते, अनुभव करते और खाते हैं। सदैव यह अनुभव करो।

६१४. अध्यात्मिक जीवन ही मुख्य है। संसार मिथ्या है। यह छाया मात्र है, यह माया का इन्द्रजाल है। यह स्वप्न है। ब्रह्म ही केवल सत्य है। तुम शरीर की उपाधि से रहित ब्रह्म ही हो।

'तत्वमसि, तू वह ही है मेरे मित्र रामानन्द। मैं इन तीन विचारों को बारम्बार दुहराने से थकता नहीं हूँ। यह विचार तुम्हारे रक्त, हड्डी, नस नाड़ियों और कण २ में व्याप्त हो जाने चाहिए जिन मनुष्यों से मिलो उनके चित्त पर इनकी चोट हथोड़े की भान्ति लगाओ। भक्ति और निष्काम कर्म्म की शिक्षा दो।

६१५. भक्ति योग में ५ प्रकार के भाव होते हैं सन्त भाव, वात्सल्य भाव, दास्य भाव और सखा भाव माधुर्य-भाव को कान्ता-भाव भी कहते हैं, सखी-भाव भी माधुर्य-भाव के अन्तर्गत आता है। अपने स्वभाव के अनुसार किसी भाव को पसन्द करलो और उसको पूर्णतया उन्नत करो।

६१६. संन्यासी भक्तों का सन्त भाव होता है। सन्त-भाव का भक्त भावुक नहीं होता। वह अधिक भाव प्रदर्शित नहीं करता। वह न तो रो सकता और न ही नृत्य कर सकता है परन्तु उसका हृदय भक्ति से पूर्ण होता है। श्री विन्दु घोष इनमें शिरोमणी है और वह नाचने और रोने को एक प्रकार की कमजोरी बतलाते हैं। सूफी मुसलमानों में भी यह भाव पाए जाते हैं। वृन्दावन, मथुरा और नडियाद में इस प्रकार के भक्त बहुत मिलते हैं।

६१७. माधुर्य-भाव में भक्त प्रिय और प्रियतम के भाव को प्राप्त हो जाता है। वह अपने आप को राम या कृष्ण का समझने लगता है। वे स्त्री का रूप धारण कर लेते हैं और उन्हीं के सदृश बोलते हैं और व्यवहार करते हैं। वह खूब ही नृत्य करते हैं और इतना निमग्न हो जाते हैं कि अपनी अवस्था का ध्यान नहीं रहता और थक कर मूर्छित हो गिर जाते हैं।

६१८. सखि भाव में भक्त अपने को सीता या राधा की सखि समझता है।

६१९. वात्सल्य भाव में भक्त भगवान् कृष्ण को अपने पुत्र समान या दस वर्षीय बालक के समान मानता है। सब से अधिक अच्छी बात इसमें यह कि भक्त अपने भय और आशा से पार चला जाता है वह अपने को कृष्ण का पिता तुल्य मानता है और इस अवस्था में वह अपने छोटे बच्चे या पुत्र से कोई आशा नहीं रखता और इससे वह आशा रहित निर्लेप भक्ति करता है और मोह का भाव जाता रहता है। वल्लभाचार्य मत के मानने वाले इसी भाव को जानते हैं और करते हैं।

६२०. दास्य भाव में भक्त अपने को भगवान का दास समझने लगता है और उन्हें अपना स्वामी समझता है। श्रीमहावीर जी का यही प्रेम था। अयुध्या में इस भाव के मनुष्यों की संख्या अधिक है और वह अपने नाम भी कामदास, सीता रामदास इत्यादि रखते हैं।

६२१. सखा भाव में भक्त अपने आपको अपने मित्र तुल्य मानता है। इस भाव में पवित्रता बुद्धि और साहस की आवश्यकता है। सामान्य मनुष्य के लिये कठिन है कि वह इस भाव को कर सके। परन्तु भक्ति जब बढ़ते २ पक जाती है तब यह भाव स्वयम् ही उत्पन्न हो जाता है अर्जुन में यह भाव था। इस भाव में पुजारी अपने में और अपने पूज्य में कोई अन्तर नहीं समझता। यह भाव वेदान्तिक भक्ति का एक सार रूप है इसमें तद्रूपता के उच्च शिखर पर पहुंच कर मनुष्य अर्थात् भक्त कहता है गोपालोऽहम् अर्थात् मैं गोपाल हूं।

६२२. जहां चाह वहां राह आत्मज्ञान एक प्रश्न ऐसा है जिसमें पूर्ति और मांग है। क्या तुम वास्तव में भगवान् के पाने की इच्छा करते हो। अगर तुम में यह चाह सत्य है तो इसकी पूर्ति स्वयं हो जावेगी। तुमने अपने दिन को नष्ट

किया, क्या तुम रात्रि भी नष्ट कर सकते हो ? संसार दो दिन का मेला है। जीवन पाञ्च मिनट का खेल है।

६२३. तुम्हारा जीवन इतना विस्तारित होना चाहिये जितना आकाश और समुद्र सदृश अथाह होना चाहिये।

६२४. मेरे भगवान् शिव जिनका हृदय ही हरि रूप है और जो स्वयं उपनिषदों के ज्ञान निर्गुण ब्रह्म रूप हैं।

६२५. तुम २४ घण्टे में २००० माला हरि ओम् नाम की जप सकते हो श्रीराम ऐसा मन्त्र एक लाख सात घण्टे में जप सकते हो और दस हज़ार आधे घटे में।

६२६. तुम बाह्य शारीरिक स्नान की अधिक चिन्ता न करके अपनी बुद्धि को स्वच्छ बनाने की अधिक चेष्टा करो। क्योंकि (मछली) चौबीसों घण्टे पानी में रहती है और वह भी गंगा का पानी मगर फिर भी मैली और गन्दी रहती है।

६२७. हिन्दु और मुसलमानों का मिलना एक असम्भव सी बात है। कबीर ने बड़ा परिश्रम किया मगर निष्फल रहा। गांधी जी ने जितना बल लगाया उसका भी फल भला नहीं हुआ अन्य-अर्थों में वे भी अनुत्तीर्ण रहे। अगर इनके बीच में एकता की रस्सी काम कर सकती है तो वह है आत्मज्ञान। एक अद्वैतिक ज्ञान वाले मुसलमानी सूफी फकीर और उसके सच्चे साधारण प्रेम देखो।

६२८. मानो नाम और रूप अलग अलग हैं परन्तु सार या तत्त्व एक ही है नाम और रूप इस तत्व में बह रहे हैं परन्तु हम सब का आधार एक ही है और एक आधार पर ही हम सब मिले हुए हैं सर्व साधारण भ्रातृत्व एकता ही के प्रतिपादन की ओर लक्ष करता है। यह मनुष्य को अद्वैत अवस्था की ओर ले जाता है और अद्वैतिक ज्ञान पैदा करता है (सर्वंत्र ब्रह्मः)

६२९. अगर तुम्हारे साधन में कोई व्याघात आजाये तो उस न्यूनता या कमी को सायंकाल में या रात्रि में और अगर इनमें नहीं तो आगामी प्रातःकाल में सम्पूर्ण करो। योग या समाधि ही तुम्हारे पास सब से बड़ी सम्पत्ति है जिस द्वारा यह कम असम्पूर्णता पूर्णतया को पहुंच जाती है।

६३०. आपको विहार और परिभ्रमण में भी जाप और गीता पढ़नी चाहिये। क्या आप विहार परिभ्रमण में भोजन नहीं करते ? अगर ऐसा है तो अंतर्वर्तिन नियम को क्यों भङ्ग करते हो उसके लिये कृतघ्न क्यों बनते हो जो तुम्हें प्रति दिन तुम्हारा भोजन देता है और येन केन प्रकारेण तुम्हारी रक्षा करता है।

६३१. इस संसार में मनुष्य का बहुत कम प्रयोजन है और वह चार रोटी और दो चमचे दाल है जिससे उसकी क्षुधा निवृत्ति होती है और दो कपड़े के टुकड़े उसकी नग्नता को दूर कर उसकी शीत ऋतु से रक्षा कर सकते हैं।

६३२. या अनुसंधान का अर्थ अन्वेषण निरूपण जिज्ञासा है। 'अनु' अर्थात् पश्चात् 'सन' अर्थात् बलवत् और 'धान' अर्थात् मनोयोग यह अनुसन्धान का खण्डार्थ है आत्मानुसन्धान अर्थात् सर्वोच्च आत्मा के बारे में निरूपण करना। यह विचार समानार्थ वाचक है।

६३३. असफलता उत्तीरणता का स्तम्भ है अन-उत्तीरणता या विफलता से निराश मत हो जाओ। उठो कटिबद्ध होओ साहस करो दुःखों का प्रतिरोध करो और एक एक करके उनके पार होओ।

६३४. पूर्व में आकांक्षा के लिये सत्संग, विरक्ता, अपरिवर्तनीय प्रयोजनीय वस्तु है। पुरातन संसारिक संस्कार इन तीनों के बिना नहीं बदले जा सकते।

६३५. प्राकृतिक अवस्था दर्शन महिलाओं में अधिक है। इसलिए उनसे वैराग रखना चाहिये। जैसे ही तुम समाधि में बैठो तब जोर से ओ३म् शब्द का उच्चारण तीन या छः बार करो। यह संसारिक विचारों और मन की विक्षिप्तता को दूर करता है। तब मन में बार बार ओ३म् का ध्यान करो।

६३६. निरीश्वर-वादी और नास्तिक में भेद है। निरीश्वर-वादी वह है जो ईश्वर की सत्ता से इनकार करता है। कपिल के अनुयाई निरीश्वर-वादी हैं। नास्तिक वह है जो कहता है कि शरीर से भिन्न स्वतन्त्र आत्मा की कोई सत्ता नहीं है और यह शरीर ही स्वयं आत्मा है। उसका मत है कि जिस तरह पान और चूने के मिलने से लाल रंग बन जाता है इसी तरह पांच तत्वों के मिलने से आत्मा बन जाता है। चारवाक इस मत के अनुयायी हैं। उनका मत है कि शरीर के नष्ट होने पर अथवा पृथक् २ हो जाने पर आत्मा भी नाश को प्राप्त हो जाता है।

६३७. यदि समस्त संसार भी तुम्हारा विरोध करे तो भय मत करो, अपने दृढ़ निश्चय और विचार से एक इंच भी मत हिलो, खड़े हो जाओ और सत्य का प्रचार करो। यदि समस्त संसार भी तुम्हारा त्याग करदे तो भयभीत न हो। तुम्हारे हृदय में बैठा हुआ अन्तरात्मा तुम्हारा साथी है। वह सर्वदा तुम्हारी सहायता करने के लिए तय्यार है। बालक की भान्ति उसके समक्ष अपने हृदय को खोलकर रखदो। उससे बात करो, वह सब कुछ देने वाला है। मेरे प्यारे हंस राज प्रसन्न होजाओ।

६३८. भगवान् के भक्त समस्त संसार में एक अदृष्ट शृंखला में बन्धे हुए हैं। यह संसारी पुरुषों में भगवान् के भावों को जाग्रत करते हैं। इन भिन्न प्रकार की अवस्था वाले भक्तों की वाणी में समता है। यह हृदय की वाणी है। इनमें समस्त भेद मिट गए हैं।

६३९. अपनी दृष्टि को ओ३म् पर स्थिर करो अपनी समस्त दीवार पर काली स्याही से ओ३म् शब्द लिखदो। ओ३म् के चित्र के सामने बैठकर उसपर ध्यान लगाओ और जबतक आखों में आंसु न आजायें बराबर दृष्टि लगाए देखते रहो फिर आखें बन्द करलो ओ३म् चित्र को देखो। फिर आखें खोलो, फिर ध्यान लगाओ यहां तक कि आखों से आंसु टपकने लगें। इस समय को धीरे २ बढ़ाओ। ऐसे भी विद्यार्थी हैं जो तीन घण्टे बराबर देख सकते हैं। इसका नाम त्राटक है। यह हठ योग की षट क्रियाओं में से है। ओ३म् के चित्र को बराबर देखते रहो। इसको दीवार लगाकर ध्यान करो। चित्र बाज़ारों में बिकते हैं। त्राटक से चित्त का भ्रमण और विक्षेप दूर होजाता है। ओ३म् पर दृष्टि लगाने के पश्चात एक बिन्दु पर दृष्टि लगाओ त्राटक करते समय दीवारें सुनहरी रंग की दिखाई देंगी।

६४०. सफेद कागज़ पर बड़ा काला चिन्ह लगाओ और इसको दीवार में लगदो। योग के जिज्ञासुओं के लिए यह निशाना है। त्राटक राम, कृष्ण, शिव आदि किसी भी चित्र पर किया जा सकता है। पद्मा सन से बैठकर चित्र को अपने सामने रखो त्राटक से आंख की बहुत सी बीमारियां चली जाती हैं और सिद्धियों की प्राप्ति होति है। दृष्टि जमाने से

मन के विचार के ठीक २ फोटो उतर आते हैं। तुम ओ३म् का साक्षात्कार कर सकोगे और भगवान का चित्त तुम्हारे हृदय पटल पर अङ्कित होजावेगा त्राटक से चित्त की एकाग्रता में भी बहुत लाभ होता है। पहले दिन एक मिनट त्राटक करना चाहिए। फिर शनै २ समय को बढ़ाना चाहिए। आखों पर विशेष जोर नहीं देना चाहिए आसानी और आराम के साथ अभ्यास करना चाहिए। त्राटक के समय अपने इष्ट मंत्र का जप करना चाहिए। जिनकी पलकें कमजोर होती हैं उनकी आखें लाल होजाती हैं। इससे उनको घबरना नहीं चाहिए। यह दोष शीघ्र ही ठीक होजावेगा। छ मास तक त्राटक करने पर चित्त की एकाग्रता और ध्यान में उन्नति होजावेगी। अपना साधन नियम पूर्वक नित्य प्रति करना चाहिए। यदि किसी दिन साधन न होसके तो दूसरे दिन उतना ही अधिक करना चाहिए।

मन के मोती।

[ले० श्री० महाकवि, पं० प्रतापनारायण जी]

सुनेगा कोई किस की क्या,
भरी हैं मन में सब बातें ?
सभी दुनियां में करते हैं,
आपके मतलब की बातें ॥
कमीना वही कहाता है,
नीच जो गिनता औरों को।
रंग से बड़ा मानता है,
सदा कालों से गौरों को ॥
नहीं जल गिनता करुणा-पात्र,
मीन सी दीना पगली को।
तोड़ने वाला क्या समझे,
कली की बड़ी बेकली को ॥
नरों में होते कई अछूत,
भाव यह क्यों मन में भरता ?
छूत बन मिट्टी का पुतला,
घृणा क्यों मिट्टी से करता ?
सभी मानव हैं एक समान,
कौन जन स्वर्ण-शीश का है ?
लोक में क्या अछूत, क्या छूत,
लाडला उसी ईश का है ॥

रमा का ही सेवक रहता,
जमा कर आसन जो वन में;
रमाता धूनी तब वह व्यर्थ,
राम जब नहीं रमा मन में ॥
मारना छापा ही है तब,
लगाना खूब तिलक छापा;
नहीं जब अपने को भाता,
मारना अपना ही आपा ॥
माल के भरे खजाने देख,
धनी जन क्यों मद माते हैं ?
यहां वे आते खाली हाथ,
हाथ खाली ही जाते हैं ॥
फूल कर क्यों कुप्पा होवें,
सभी को दो दिन जीना है।
यहां क्या बड़ा कुवा खोदें,
चार दिन पानी पीना है ॥
रात दिन खा-पी करके भी,
जगत् तो भूखा प्यासा है।
ईश की आशा ही है सार,
और सब खेल-तमाशा है ॥

भगवान् क्यों नहीं मिलते

[ले० श्री० प्रेम पथ पथिक जी]

लोग कहते हैं कि हमने अनेक प्रयत्न किया, जप, तप संयम और व्रत भी किया पर भगवान् नहीं मिले। ऐसे लोगों की बुद्धि पर हंसी आती है और साथ २ दया भी होती है। मुझे ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिलता जिसमें भगवान् को आर्त्त होकर सच्चे हृदय से पुकारा गया हो और वह फौरन से पेशतर नहीं आये हों। और तो क्या ऊद्द बाजी में अपने वाहन को भी त्याग जैसे के तैसे भक्त की रक्षा के लिये दौड़ पड़े हैं। बाज मौके पर तो उन्हें अपने वस्त्र का भी भान जाता रहा है। वे तो भक्तों का सदैव से योग क्षेम वहन करते आरहे हैं फिर यह कैसे संभव है कि भक्त उन्हें पुकारें और वह सुनी अन सुनी करदें। परमात्मा तो इतना दयालु है कि भक्त का तनिक सा भी दुःख देख उन्हें बेचैनी होने लगती है और अनेक अवसरों पर तो भक्तों की नौकरी भी करनी पड़ी है।

हम लोग जप, तप संयमादि तो करते हैं पर सच्चे हृदय और पूरी लग्न से नहीं। हम रोते तो हैं पर अपने कुटुम्ब-परिवार, स्त्री-पुत्र और धन, सम्पत्ति के लिये। हम तप करते तो हैं पर सांसारिक विषयों के लिये। हम जप करते तो हैं पर हमारा मन बम्बई की सैर करने लगता है। हम संयम करते तो हैं पर उसी प्रकार जिस प्रकार एकादशी को अन्न न खाकर नित्य के भोजन से भी उत्तम और अधिक भोजन कर लेते हैं और उस पर भी तुर्रा यह कि आज मैंने एकादशी व्रत किया है। लोग धर्म तो करते हैं पर अधर्म की ओट में। पुण्य तो करते हैं पर पाप की ओट में। शिकार तो करते हैं पर टट्टी की आड़ में। लोग भगवान् की आंखों में धूल झोंक उन्हें ठग लेना चाहते हैं तो भला भगवान् ऐसे जीवों को कब दर्शन देने वाले हैं। यदि ऐसे ही जीवों को दर्शन देदें तो फिर श्रीचैतन्य देव उन्हें सैकड़ों बातें सुनावें जो दिन रात गला फाड़ २ कर उनके पावन नामों की रट लगाये रहते थे। यदि ऐसे जीवों को दर्शन दें तो फिर स्वामी रामतीर्थ उनसे झगड़ पड़ें जो रात को रोते २ तकिये को आंसुओं से तर कर देते थे और गलियों की खाक छानते फिरते थे। यदि ऐसे जीवों को कृतार्थ करदें तो फिर श्रीरामकृष्ण देव जी उन्हें आड़ों हाथ लें जिन्होंने अपनी तीन चौथाई आयु रोने और 'मां मां' पुकारने में ही बिता दी थी।

भगवान् मिलते हैं और अवश्य मिलते हैं। पर कब? जब भक्त का हृदय उनके पाने के लिये व्याकुल हो उठता है। जब दोनों नेत्रों से अविरल अश्रु की दो नदियां वह निकलती हैं। जब भक्त जल हीन मछली की नाईं छट पटा कर प्राण त्यागने को तैयार हो जाता है। जब भक्त इस बात पर कटिबद्ध हो जाता है कि यातो इस नश्वर शरीर को छोड़ दूंगा या उसको ही पालूंगा। जब भक्त एकान्त में ऊंचे स्वर से, शुद्ध और पवित्र हृदय से उन्हें आर्त्त होकर पुकारता है और जब भक्त घुटने टेक कर अश्रु-पूर्ण नेत्रों से करुण शब्दों में अवरुद्ध कण्ठ से प्रार्थना करता है। बस भगवान् को लाख काम छोड़ कर आना पड़ता है और भक्त को बड़भागी बनाना पड़ता है। कौन कहता है कि भगवान् नहीं मिलते?

———

शरीर पर मनका प्रभाव

[श्री नृसिंहप्रसाद जी द्वारा गुजराती से अनुवादित]

हमारे विचार बदलने से हमारा भाग्य भी बदल जाता है। हमारे विचारों के साथ जब हमारी इच्छा और प्रयत्नों का एकीकरण होगा तब हम जो कुछ होना चाहेंगे हो जायंगे और जो करना चाहेंगे कर सकेंगे। जिस दिव्य शक्ति से हमारे उद्देश्य रचे जाते हैं वह हमारे अन्दर ही है, वह हम स्वयं ही हैं।

हेन्री अर्विंग जिस समय बेल्स नाम नाटक में मृत्यु प्राप्त होने का सुप्रसिद्ध पार्ट करता था उस समय उसके अन्तःकरण पर भारी भार पड़ता था। इसी कारण उसके स्वास्थ रक्षक वैद्यों ने उसे इस पार्ट को नहीं करने का आदेश दिया था, एलन टेरी जो कि बहुत वर्षों तक उसकी अग्रसर नटी रही थी अपने लिखे हुवे जीवन चरित्र में बताती है कि जब जब वह मरने के घंटे की आवाज सुनता था तब तब वह उसके अन्तःकरण पर होते हुवे असर के कारण मृत्यु के किनारे आगया सा विदित होता था। क्योंकि उस समय सर्वदा वह श्वेत रुई की पूनी जैसा हो जाता था। इसमें उसकी किसी प्रकार की बनावट नहीं थी वरन एक मात्र कल्पना ही का शरीर पर असर पड़ता था। वह इतनी भयंकरता से मृत्यु की कल्पना करता था कि वह वस्तुतः मर ही जाता था। उसकी आंखें ऊपर को चढ़ जातीं थीं, उसका मुख श्वेत होजाता था और उसका शरीर ठण्डा पड़जाता था। ऐसी स्थिति में उसने उसके वैद्य के आदेश का प्रथमवार अनादर करके अपना पार्ट किया। उसका अन्तःकरण इस भार को सहन नहीं कर सका। इसमें कोई आश्चर्य नहीं। उसने मर्चिमास की मृत्यु का पार्ट अन्तिम वार किया और उसके चौबीस घंटे के पश्चात् सचमुच ही उसकी मृत्यु होगई। उसकी मृत्यु की रात्री में जिस समय वह बेकेट का पार्ट कर रहा था उसके वैद्यों के मतानुसार वह उस समय में मरा हुवा ही था परन्तु अपने कार्य के लिये महान् उत्साह के कारण तथा श्रोताओं की उल्लासदायक उत्तेजना से वह इतना अधिक उत्साहित तथा उत्तेजित होगया था कि इसी कारण उसकी मृत्यु इतने समय तक अटकी रही।

एडवर्ड अर्ल सार्थन कहता है कि जिस समय मैं रंग भूमि पर होता हूं उस समय मेरे मस्तिष्क की प्रवृत्ति अत्यन्त बढ़ जाती है। और उसके साथ ही साथ शरीर में भी स्फूर्ति सी विदित होती है, श्वांस के द्वारा जो वायु मैं खींचता हूं वह भी मुझे विशेष प्रोत्साहक विदित होती है तथा रंगभूमि के द्वार के आगे ही थकान मेरा त्याग करदेती है। प्रसिद्ध वक्ताओं, उपदेशकों तथा विख्यात गायकों को इसी प्रकार के अनुभव हुवे हैं अपनी "कर्तव्य निष्ठा" चाहे उसकी इच्छा हो या न हो तोभी अपने से बन सके उतना उत्तम से उत्तम कार्य करने को विविश करती है। यह एक ऐसा बल है जिसको कोई भी साधारण दुःख अथवा शारीरिक असक्ति दबा नहीं सकती। नटों और गायकों में एक साधारण उक्ति प्रचलित है कि "बीमार पड़ने का उन्हें अवकाश ही नहीं मिलता"। एक नट कहता है कि "हम बीमार पड़ते ही नहीं क्योंकि हमारे पास इसके लिये अवकाश ही नहीं। कितने ही प्रसंग ऐसे आये हैं कि यदि उस समय मैं घर होता अथवा निष्क्रिय होता तो अवश्य ही शय्यावश होगया होता। परन्तु मैंने ऐसा नहीं किया और केवल मेरे नट के तौर पर की आवश्य-

कता ने ही मेरे बीमारी के आक्रमण को टाल दिया।" मनोबल उत्तमोत्तम शक्तिदायक औषध है। इस बात में किंचित् भी असत्य नहीं है। इस बात को नट खूब जानते हैं कि उनको इसका खूब अधिक ख्याल सदा तय्यार रखना चाहिये।

जब तक कसौटी का प्रसंग नहीं आता हम कितना दुःख सहन कर सकते हैं इस बात को हम नहीं जान सकते। बहुत सी मोह ग्रसित मातायें जो अपने बालकों के मरे पीछे अपने जीवन की कोई आशा नहीं रखती थीं उन्होंने जीवित रह कर अपने पतियों की अन्त्येष्टि क्रिया की। अपने कुटुम्ब के अन्तिम पुरुष की अन्त्येष्टि क्रिया की और उसके पीछे उनका घर तथा सर्व सम्पत्ति नष्ट होगई परन्तु यह सब उन्होंने सहन किया तथा पहिले की भांति अपना निर्वाह किया। जिस समय हमें आवश्यकता होती है हमारी गुप्त शक्तियां प्रकट हो पड़ती है। मेरे एक मित्र ने मुझे अभी २ बताया कि एक कुंतड़ा जो किसी रोग से अत्यन्त पीड़ित था तथा उठकर या खड़ा होकर नहीं चल सकता था बैठा २ घिसट २ कर चलता तथा भिक्षा मांग कर अपनी उदर पूर्त्ति करता था चिरकाल तक उसकी यही दशा रही। एक बार वह घिसटता हुवा एक नाले में से गुजर रहा था की अचानक नाले में पानी आगया और जब पानी उसकी नाक तक पहुंचा उसको ऐसी संकटमय स्थिति उत्पन्न हुई कि उसने एक झटका मारा और खड़ा हो गया उसका वह रोग समूल नष्ट होगया। लोगों ने जब उसे सीधा चलते देखा तो उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा।

अनेक डरपोक कन्यायें जो सदा केवल मृत्यु के विचार मात्र से ही कांप उठती थीं वे किसी भयंकर दुःख के अकस्मात् आपड़ने पर बिलकुल भय तथा बड़बड़ाहट किये बिना मृत्यु की शरण में चली गई हैं। हम किसी भी अनिवार्य भय के सन्मुख अद्भुत हिम्मत से खड़े रह सकते हैं। कितनी ही प्रसूती नाजुक स्त्रियां 'चीर फाड़ से जीवन हानि तक सम्भव है' यह जानती हुई भी अद्भुत् हिम्मत से शस्त्र क्रिया करालेती हैं। परन्तु वे ही स्त्रियां सिर पर भ्रमती हुई किसी अनिश्चित भय की कल्पना से अति भयभीत तथा भीरू बन जाती हैं।

जो मनुष्य मच्छर का डंक भी सहन नहीं कर सकते और साधारण स्थिति में बेहोशी की दवा बिना एक दांत भी निकलवाने की शक्ति नहीं रखते तथा थोड़ा सा भी मांस कटा नहीं सकते उनपर जब परदेश में कोई अकस्मात् दुःख आकर पड़ जाता है तो वे अपना सारा शरीर तक भी कटवाने को शक्तिमान होते देखे गये हैं।

लगी हुई आग में मैंने एक दरजन भर आदमियों को भय के लेशमात्र लक्षणों के दिखाये बिना जल मरते देखा है। प्रत्येक आदमी में एक ऐसी शक्ति विद्यमान है जो संकट के समय उसको हिम्मत देती है, चाहे जैसे भय का सामना करने के लिये उसे समर्थ बनाती है। यह शक्ति और कुछ नहीं हमारे भीतर अन्तःकरण में विराजमान स्वयं श्री भगवान् ही हैं। आग में जल मरने वाले उक्त बहादुर नर श्रेष्ठों ने आग से मुक्त होने के प्रत्येक साधन को नष्ट होते देख कर भी भय का अपने हृदय में संचार तक नहीं होने दिया। उनकी तरफ फैंकी अग्नि नौका भी जल कर भस्मी भूत होगई थी तथा आखिरी सीढ़ी भी जल चुकी थी। वे एक जलते हुये कमरे में सौ फुट ऊंचे एक जलते हुये मीनार में थे, परन्तु जिस समय वह मीनार अग्नि के झपूके में टूट कर गिरपड़ा उस समय भी उन्होंने

डर वा कायरता के लेश मात्र भी चिह्न प्रगट नहीं किये।

जिस समय मैं दक्षिण डाकोर के श्याम-गिरि में आये हुये डेडकूट नामक टेलीफोन में था उस समय मेरे सुनने में आया था कि उस स्थान में रेलवे तथा तार स्थापित होने से पूर्व लोगों के बीमार पड़ने पर एक सौ मील से वैद्य बुलाने की आवश्यकता पड़ती थी। इस कारण साधारण स्थिति के आदमी वैद्यों को नहीं बुला सकते थे। इसका परिणाम यह हुवा कि लोग इतने अधिक अंश में स्वावलम्बी बनना सीखगये कि वैद्य को कदाचित् ही किसी भारी आकस्मात् आ पड़ने तथा कोई बड़ा विपत्ति काज आ पड़ने पर ही बुलाया हो, तो हो। उस स्थान में अधिक से अधिक बालकों वाले कुटुम्ब भी बिना वैद्य का मुख देखे ही स्वस्थ बने रहे। "तुम कभी बीमार पड़े हो" ऐसा प्रश्न जब कभी मैं उन लोगों से पूछता तो वह लोग प्रत्युत्तर में कहते कि नहीं! हम कभी बीमार नहीं हुये। इसका कारण केवल यही है कि हम निरोग रहने के लिये बाधित रहे हैं। वैद्य की सहायता लेने की हम में शक्ति नहीं और यदि शक्ति हो भी तो वैद्य को यहां बुलाने में इतना समय निकल जाता है कि वैद्यके पहुंचने से पहिले ही बीमार का अन्त काल हो जाता है।

हम जिसे उच्चतर शिक्षण कहते हैं उसके द्वारा हमें प्राप्त हुई खराब से खराब वस्तुओं में से एक वस्तु यह है कि व्याधि का प्रतीकार करने की अपने अन्दर रही हुई शक्ति पर से हमारी श्रद्धा उठ जाती है। हमारे बड़े शहरों में लोग बीमारी के लिये पहले ही से भारी तय्यारी कर रखते हैं। वे बीमारी की बाट ही देखा करते हैं बीमार के लिये पहिले ही से तयार होने के कारण वह उनको प्राप्त होती है। बड़े शहरों में दो चार मकानों को लांघते ही डाक्टर वा वैद्य का साइन्स बोर्ड दिखाई पड़ता है। और स्थान २ पर तयार औषधि की दुकानें होती हैं। जरासा बीमारी का चिह्न मालूम पड़ा कि वैद्य को बुलाने तथा दवाइयों को मंगाने के अतिरिक्त और कुछ सूझ नहीं पड़ता। इस का परिणाम यह हो चला है कि हम दिन२ वैद्य और दवा पर अपने स्वास्थ्य को अधिक २ निर्भर करते जाते हैं और इस तरह अस्वस्थता को मिटाने की अपनी कुदरती हमारे अन्दर रही हुई शक्ति को घटाने का कारण बनाते हैं। पहले अधिकतर गांव ऐसे थे कि जहां एक भी वैद्य तथा डाक्टर नहीं होने के कारण मनुष्य मजबूत, नीरोग, और स्वतंत्र थे क्योंकि उनमें व्याधि का प्रतीकार करने का बहुत अधिक विकाश होगया था।

इस बात में कुछ भी शंका नहीं है कि अधिक कुटुम्बों में बालकों की दुर्बलता के साथ वैद्य को बार २ बुलाने की आदत का बड़ा भारी सम्बन्ध होता है। बहुत सी माताओं की बालक के शरीर में जरा भी अस्वस्थता का चिह्न दिखाई देते ही वैद्य को बुलाने की आदत होती है। परिणाम स्वरूप उनके बालकों के चित्र पट पर निरन्तर वैद्य और औषधि के चित्र अंकित होते रहते हैं, जिसका उनकी तमाम आयु पर असर रहता है और बहुधा उनका जीवन रोगमय व्यतीत होता है।

एक समय ऐसा आयेगा कि बालकों का वैद्य तथा औषधि के साथ जरा भी सम्बन्ध नहीं रहेगा। यदि बालकों को प्रेम, सत्य और शान्ति के पाठ यथावत् सिखाये जाँय, यदि उनको शुद्ध चिन्तन सिखाया जाय तो फिर वैद्य और औषधि की आवश्यकता उनको कदाचित् ही हो। इसी शिक्षण के प्रताप से अमेरिका में गत दशवर्षों में

हजारों कुटुम्बियों ने कभी कोई औषधि नहीं ली। अब वहां यह मान्यता अधिक से अधिक निश्चित होती जाती है कि एक समय ऐसा आयेगा कि हमें आरोग्यता प्राप्त करने अथवा श्री भगवान् की बनाई हुई इस मनुष्य देह को सुधारने के लिये किसी मनुष्य को रोकने की आवश्यकता भूतकाल की वस्तु हो जायगी। ईश्वर ने अपनी सृष्टि की बड़ से बड़ी वस्तु कभी भी किसी दैव योग या क्रूर भाग्य की दया पर छोड़ी नहीं। उसने कभी भी ऐसा उद्देश्य नहीं रक्खा कि उसकी एक सन्तान का जीवन, स्वस्थता और कल्याण उसकी बीमारी की औषधि के आधर पर ही रहा करे।

क्या यह मानना योग्य नहीं कि आदमी की बीमारी की दवा उसके आपे में ही-उस के अपने ही मन में ईश्वर डाले रखता है कि जहां से जिस समय उसे आवश्यकता हो मिल जाय पृथ्वी के दुर्गम स्थानों में जहां कोई २ मनुष्य ही पहुंच सके हैं उन स्थानों पर वह मनुष्य के रोगों की दवा क्यों उत्पन्न करने लगा।

हर एक व्यक्ति में एक इस प्रकार का गुप्त बल, एक इस प्रकार की अविनाशी शक्ति, आरोग्य का एक इस प्रकार का अचल नियम रहता है कि यदि उसका विकार करने में आवे तो वह हमारे तमाम जख्मों को भरदे और संसार की तमाम बीमारियों को नष्ट करदे।

अपने आपको यदि किसी आवश्यक काम में भाग लेना हो तो उस समय लोग बहुत बीमार होते हैं। यदि किसी की तबियत किसी दिन बहुत खराब हो परन्तु उस दिन उसे किसी बादशाही मुलाकात में निमन्त्रण मिला हो तो उस दिन उसकी बीमारी तुरन्त भग जाती है। और वह स्वस्थ की भाँति उसमें शामिल हो जाता है।

निरन्तर रोगी रहने वाले कितने ही मनुष्य उनपर कोई जवाबदारी का मामला आते ही अच्छे हो जाते हैं। किसी अपने बड़े स्नेही के मरने या सम्पत्ति का नाश हो जाने से अथवा किसी संकट का प्रसंग आपड़ने से वह अपनी रोगशय्या छोड़ कर उठ खड़े होने को बाध्य होते हैं और ऐसे समय में उन्हें अपने शरीर सम्बन्धि विचार करने, अपने रोग को मनन करने, और अपने दुःखों का चिन्तन करने का समय ही नहीं रहता इस कारण से उनके सारे रोग तथा दुःख भाग जाते हैं।

आज आरोग्यता को भोगने वाली हजारों स्त्रियां ऐसी हैं कि यदि वे अपने दुःखमय विचार छोड़ने, औरों के लिये विचार करने, अपने आश्रितों का निर्वाह करने और उनके लिये धंधा रोजगार तलाश करने के लिये बाधित हुई होतीं तो आज से बहुत वर्षों पहिले ही उनके जीवन का अन्त होगया होता।

संसार में बहुत सारे स्त्री पुरुष ऐसे हैं कि यदि उनका वश चले तो रोगी पड़ कर शय्यागत हो जांय परन्तु उन्हें भूखे मनुष्यों को भोजन कराना होता है, बालकों के लिये वस्त्र जुटाने होते हैं, तथा जीवन सम्बन्धि निरन्तर कर्तव्य का उन के ऊपर इतना अधिक दबाव पड़ा होता है कि जिसके कारण वे काम किये बिना रह ही नहीं सकते तथा उनको काम करने की रुचि हो या न हो उन्हें काम करना ही पड़ता है।

आवश्यकता एक ऐसा अमूल्य आधार है कि जिसकी सहायता से मनुष्यों ने भयंकर विघ्नों के सन्मुख होकर चमत्कार करके दिखा दिये हैं। किसी भी प्रकार की महत्ता रखने वाले प्रत्येक पुरुष को अपने अन्दर एक ऐसी शक्ति की प्रतीति होती रहती है कि जो उसे निरन्तर आगे धकेलती

रहती है और उसे हमेशा अपने आपे को सुधारने के लिये प्रयत्न शील बनाये रखती है। उसे काम करने की रुचि हो या न हो परन्तु यह आन्तरिक शक्ति उसे काम में निमग्न रखती ही है।

यह क्षुद्र आग्रही 'कर्तव्य पालन' हमारे पीछे पड़ा ही रहता है वह हमें जाग्रत करता रहता है और कार्य में प्रवृत्त करता रहता है। उसके कारण हम खुशी से संकट, दुःख और अड़चन सहन करते रहते हैं। जिस समय हमारी मनोवृत्ति हमें मौज-शौक करने को ललचाती है यही 'कर्तव्य पालन' हमें खुशी से गुलाम की भांति काम करने के लिये बाधित करता है।

मोक्ष के साधन

(ले० श्रीमद्रामा राम]

मोक्षस्य हेतुः प्रथमो निगद्यते ।
वैराग्यमत्यन्तमनित्य वस्तुषु ॥
ततः शमश्चापि दमस्तितिक्षा ।
न्यासः प्रसक्ताखिल कर्मणां भृशम् ॥

मोक्ष के साधनों में प्रथम वैराग्य का निरूपण किया है। पश्चात् शम, दम, तितिक्षा और त्याग आदिक साधन कहे हैं। शम-विषयों के चिन्तन करने से मन को रोकना। दम-इन्द्रियों को अपने २ विषय भोगों से रोकना। तितिक्षा-स्वभाविक होने वाले शीतोष्णादिक द्वन्द्व दुःखों का सहन करना। संन्यास-लौकिक तथा वैदिक सर्व कर्मों के फला त्याग करना तथा आसक्ति युक्तव्यवहार से निवृत्त होना इत्यादि अन्य साधन कहे हैं। वैराग्य को सब साधनों में प्रथम होने से तथा शम दमादिकों को वैराग्य के अन्तर्भूत होने से अधिकारी पुरुषों को विशेष करके वैराग्य ही संपादन करना चाहिये।

वैराग्यस्य फलं बोधो बोधस्योपरती फलम् ।
स्वानन्दानुभवाच्छांतिरेवैवोपरतेः फलम् ॥

वैराग्य का फल बोध अर्थात् ज्ञान है। ज्ञान का फल उपरति अर्थात् निवृत्ति है। और निवृत्ति का फल स्वात्मानन्द के अनुभव से परम शांति है।

निवृत्तिः परमा तृप्तिरानन्दोऽनुपमः स्वतः ।

बाह्येन्द्रिय तथा अन्तर वासना की निवृत्ति ही परम श्रेष्ठ तृप्ति है पश्चात् आनन्द तो स्वतः ही होवेगा। क्योंकि बाह्य विषयों से मन को रोकने से मन की प्रसन्नता तथा शुद्धि होती है और 'मनः प्रसादे परमात्म वेदनम्' मन की प्रसन्नता से परमात्मा का ज्ञान होता है। 'तस्मिन्सुदृष्टे भव बन्ध नाशो' तिस परमात्मा के ज्ञान से संसार के बन्धन का नाश हो जाता है बाह्य अनात्म पदार्थों का भले प्रकार से निरुद्ध होना ही मुक्ति है।

वैराग्यं परमेतस्य मोक्षस्यपरमोऽवधिः ।

यह वैराग्य ही मोक्ष के लिये परम साधन है। वैराग्य पर तथा अपर इस भेद से दो प्रकार का है उन दोनों में अपर वैराग्य यतमान, व्यतिरेक, एकेंद्रिय, वशीकार, इन भेदों से चार प्रकार का है। इस संसार में यह वस्तु सार है और यह वस्तु असार है ऐसा जो सारासार का विवेक है वह यतमान वैराग्य कहा जाता है। चित्त में जो रागद्वेषादि दोष हैं उनमें इतने दोष तो हमारे निवृत्त हो गये हैं तथा इतने दोष अभी शेष हैं इस प्रकार के विचार से वर्तमान दोषों को त्याग देने का प्रयत्न करना व्यतिरेक वैराग्य है। मन में विषय भोगों की इच्छा के विद्यमान होते हुवे भी

इंद्रियों के निरोध का प्रयत्न करना एकेन्द्रिय वैराग्य है। इस लोक के तथा परलोक के देखे सुने विषय भोगों को नाशवान् जान कर त्याग की इच्छा करना यह वशीकार वैराग्य है। यह वशीकार वैराग्य भी मन्द, तीव्र, तीव्रतर भेद करके तीन प्रकार का है। पुत्र स्त्री धन संपदा का नाश हो जाने पर इस संसार को धिक्कार है ऐसी बुद्धि से विषयों के त्याग की इच्छा करना मंद वैराग्य है। इस जन्म में, हमारे को यह स्त्री पुत्रादि पदार्थ न प्राप्त होवें इस प्रकार स्थिर बुद्धि से त्याग की इच्छा होना तीव्र वैराग्य है। पुनरावृत्ति से जो ब्रह्म लोक तक स्वर्गादिक लोक हैं वह सर्व लोक हमको कदाचित् भी न प्राप्त हों ऐसे त्याग की इच्छा को तीव्रतर वैराग्य कहा है। उपरोक्त मन्द वैराग्यवान् पुरुष को घर बार के त्याग करने को निषेध किया है। मन्द वैराग्यवान् पुरुष अपने गृह में रह कर भगवद्भक्ति करता हुआ वैराग्य को प्राप्त होता है।

यदा मनसी वैराग्यं जायते सर्व वस्तुषु।
तदैव संन्यसेद्विद्वानन्यथा पतितो भवेत्॥

जिस समय सर्व वस्तुओं में वैराग्य होवे तभी यह विवेकी पुरुष गृह आदि का त्याग करे। अन्यथा त्याग करने से पतित होगा।

संसारमेव निःसारं दृष्ट्वा सारदिदृक्षया।
प्रव्रजंत्यकृतोद्वाहाः परं वैराग्य माश्रिता॥

ब्रह्म-लोक पर्यन्त सर्व संसार को निःसार जानने की इच्छा करके परं वैराग्य को प्राप्त होकर संन्यास का ग्रहण करते हैं।

'एतमेव विदित्वा मुनिर्भवति' ॥

इस आत्मा को साक्षात्कार करके यह विद्वान् मुनि अर्थात् मन तथा इंद्रियों के संयम वाला परम हंस संन्यासी होता है। तथा इस परम आत्मा को जान कर तत्वज्ञ पुरुष पुत्र एषणा, वित्त एषणा, लोक एषणा, इन तीन एषणाओं का त्याग करके भिक्षावृत्ति से शरीर का निर्वाह करता है।

जो विद्वान् शीत की निवृत्ति अर्थ केवल कंथा कौपीनादि वस्त्रों को तथा ज्ञान रूप एक दण्ड को धारण करता है, सर्वदा अन्तर आत्मा के ध्यान में तत्पर रहता है, निरन्तर एकाकी विचरता है, मृत्तिकामय कपाल अथवा अपने दोनों हाथ ही पात्र किये हैं जिसने तथा वृक्षों के मूल में निवास करता है, किसी की भी जिसको सहा-सहायता नहीं है, सर्व भूत प्राणी मात्र में जिसकी सम बुद्धि है तथा–

जितात्मनः प्रशांतस्य परमात्मा समहितः
शीतोष्ण सुख दुःखेषु तथा मानापमानयोः ॥

मन को जीतने वाले शांत स्वभाववान पुरुष की बुद्धि सर्दी, गर्मी व्यवहार दशा में सुख दुःख तथा मान अपमान आदिक द्वन्द्वो में समान (निश्चल) रहती है ऐसा निश्चल बुद्धि पुरुष ज्ञान विज्ञान से तृप्त जितेन्द्रिय मिट्टी तथा सोने में

सुहृन्मित्रार्युदासीन मध्यस्थ द्वेष्य बंधुषु।
साधुष्वापि च पापेषु सम बुद्धिर्विशष्यते ॥

सुहृत्-प्रत्युपकार को न चाहने वाला जो उपकार करे। मित्र-प्रीति करने वाला अरिः-शत्रु। उदासीन-दोनों में पक्ष पात रहित मध्यस्थ-दोनों की तरफ के विवाद का यथार्थ ज्ञाता। द्वेष्य-अपने से द्वेष करने वाला। बन्धु-अपने सम्बन्धी। पुण्य कृत साधु तथा पाप कर्म कर्ता इन सब में जिसकी सम बुद्धि है वह विद्वान् पुरुष ही मुक्त होता है।

'गुणेषु वैतृष्णयं पर वैराग्यम्।'

सत्वरज तम इन तीनों गुणों के परिणाम रूप इस लोक के तथा परलोक के विषयों में तृष्णा

का न होना पर वैराग्य है।

'ततः परं पुरुष ख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम्।

प्रत्यक् आत्मा के ज्ञान से जो त्रय गुणों के परिणाम रूप विषयों में तृष्णा का अभाव है यह पर वैराग्य ही निर्विकल्प असंप्रज्ञात समाधि का अन्तरंग साधन है।

'तीव्र संवेगानामासन्नः समाधि लाभः।'

तिस पर वैराग्यवान् पुरुष को ही असंप्रज्ञात समाधि का शीघ्र लाभ होता है।

वैराग्य बोधोपरमाः सहायास्ते परस्परम्।
प्रायेण सह वर्तंते वियुज्यंते क्वचित् क्वचित्॥

वैराग्य, बोध, उपरति यह तीनों परस्पर सहायक होने से विशेषतया इकट्ठे ही रहते हैं परन्तु कहीं पर इनका परस्पर वियोग भी हो जाता है।

त्रयोऽप्यत्यन्त पक्वाश्चेन्महतस्तपसः फलम्।
दुरितेन क्वचित्किंचित्कदाचिल्प्रति बध्यते॥

महान् तप से युक्त तथा परमेश्वर के अनुग्रह से किसी उत्तम अधिकारी में तीनों इकट्ठे ही रहते हैं और मध्य अधिकारी में विषय किसी पाप कर्म के वश हुये उन तीनों का वियोग भी होता है जिस पुरुष को वैराग्य और उपरति यह दोनों पूर्ण होवें और आत्म साक्षात्कार रूप बोध न होवे तो उसकी मोक्ष नहीं होगी किन्तु तिस तप के बल कर के उत्तम लोक की प्राप्ति अवश्य होगी और जिस पुरुष को बोध तो पूर्ण होवे और किसी पाप कर्म के वश होकर वैराग्य तथा उपरति न होवे तो मोक्ष में कोई सन्देह नहीं परन्तु दृष्ट दुःख निवृत्त न होगा। अब वैराग्य बोध उपरति इन तीनों के साधन, स्वरूप, फल तथा अवधि को यथा क्रम से कहते हैं।

'दोषदृष्टिर्जिहासा च पुनर्भोगेष्वदीनता।
ब्रह्मलोक तृणिकारो वैराग्यावधिर्मतः॥

इस लोक तथा परलोक के विषयों में सातिशय अनित्यता आदिक दोषों की प्रतीति होना यह पदार्थों में दोष दृष्टि वैराग्य का साधन है। इस लोक तथा परलोक के विषयों के सर्वथा त्याग की इच्छा को वैराग्य का स्वरूप कहा है। बिना प्रयत्न से प्राप्त हुवे भोगों में जो चित्त की अदीनता है यह वैराग्य का फल कहा है। स्वर्गादिक सर्व लोकों से उत्कृष्ट जो लोक है उसको भी तृण की समान तुच्छ जानना यह वैराग्य की अवधि है।

श्रवणादि त्रयं तद्वत्तत्व मिथ्या विवेचनम्।
पुनर्ग्रंथेरनुदयो बोधस्यैते त्रयो मताः॥

गुरु मुखद्वारा वेद वाक्यों का श्रवण, मनन और निदिध्यासन यह तीनों मिल कर बोध के साधन हैं और मिथ्या देहादिकों से जो प्रत्यक आत्मा का विवेचन है यह बोध का स्वरूप है। अहंकारादिकों के साथ आत्मा का तादात्म्य अध्यास रूप ग्रंथी का पुनः अनुदय अर्थात् जड़-चेतन की ग्रंथी की पुनः उत्पत्ति न होना बोध का फल है।

देहात्मवत् परात्मत्व दार्ढ्ये बोधः समाप्यते।

जैसे अज्ञानी पुरुषों को अपने देह में दृढ़ आत्मत्व बुद्धि है तैसे परमात्मा में दृढ़ आत्मत्व बुद्धि का होना बोध की पूर्णता की अवधि है।

यमादिर्धी निरोधश्च व्यवहारस्य संक्षयः।
सुप्तिवद्विस्मृतिः सीमा भवेदुपरमस्यहि॥

यम नियमादिक 'अष्टाङ्ग योग' उपरति का साधन है। और मन की सर्व वृत्तियों का निरोध उपरति का स्वरूप है और लौकिक, वैदिक सर्व व्यवहारों का अभाव उपरति का फल है। सुषुप्ति के समान सर्व पदार्थों की विस्मृति उपरति की पूर्णता की अवधि है। वैराग्य, बोध और उपरति इन तीनों के मध्य तत्व का बोध प्रधान है क्यों के

बोध साक्षात् मोक्ष का साधन है और वैराग्य उपरति यह दोनों तत्वबोध के सहायक हैं इस लिये गौण हैं। तत्व बोध साध्य है और वैराग्य, उपरति आदि साधन हैं। परन्तु साधन से ही साध्य की प्राप्ति होती है। साधन हीन पुरुष कभी साध्य को प्राप्त नहीं कर सक्ता अतएव साधन ही सम्पादन करने योग्य है।

अद्वैतामृत

गतांक से आगे।

विवेकाश्रम के उपदेश को सुन कर चित्त-वृत्ति को जिज्ञासा हुई कि आत्मा क्या वस्तु है? इसलिये वह अत्यन्त नम्रता पूर्वक इस प्रकार बोली:-

चित्त०-जिसे आप आनन्द स्वरूप कहते हैं वह आत्मा कौन है? मैंने श्रुति की आज्ञा को सुना है कि बुद्धिमान पुरुष को पाप पुण्य से रहित आत्मा की खोज करनी चाहिये तथा उसे विशेष रूप से जानना चाहिये। श्री याज्ञवल्क्य मुनि ने मैत्रेयी के प्रति भी कहा है कि 'हे मैत्रयी! बुद्धिमान् पुरुष को आत्मा का दर्शन, श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन करना चाहिये।' इसलिये हे विवेकाश्रम! सच्चिदानन्दात्मक आत्मा को स्पष्ट करके कहो, जिसका श्रवण करके मैं इन विषयों को त्याग दूं। देह, इन्द्रियां और प्राणों के समूह से भिन्न तब किसी आत्मा की प्रतीति ही नहीं होती, तब उसकी आनन्द रूपता कैसी? क्योंकि मनुष्यों को शब्दादि-जन्य आनन्द से भिन्न थोड़ा भी अन्य आनन्द प्रतीत नहीं होता। अतः मेरे आत्म साक्षात्कार के लिये मूँज में से जैसे तीली पृथक् करके दिखाई जाती है वैसे ही अपने अभीष्ट आत्मा को अन्नमय आदि पांच कोशों से पृथक् करके निरूपण करो।

विवेकाश्रम-तू घोर जङ्गल में भटकना छोड़ कर राजमार्ग में आगई। इसलिये तुझे आत्मसंशय के विषय में बोध कराना युक्त है। इसलिये हे चित्तवृत्ति! तू जा और एक बड़ा सा मिट्टी का घड़ा ले आ, जिसकी गोलाई के समभाग में पांच छिद्र हों। एक मोटी बत्ती सहित जलता हुवा दीपक भी ला और इस अत्यन्त अन्धेरी कोठड़ी में भूमि पर दीपक को रख कर उस पर घड़े को उलटा रखदे, तथा उस घड़े के हर पाँचों छिद्रों के सामने क्रमशः वीणा, सिरस का फूल, सुवर्ण, पीने योग्य कोई वस्तु और कस्तूरी रखदे।

चित्तवृत्ति के वैसे ही करदेने पर विवेकाश्रम योगिराज बोले:-

वि०-हे चित्तवृत्ते! क्या तू इस अन्धेरी कोठड़ी में कुछ देखती है?

चि०-रखे गये वीणा आदि पांचों पदार्थों को देखती हूं।

वि०-क्या वीणा आदि पांचों पदार्थ अपने आप प्रकाशमान् हैं या छिद्रों से प्रकाशित हैं? अथवा घड़ा इनका प्रकाशक है? या और किसी वस्तु से प्रकाशित हैं?

चि०-वीणा आदि पदार्थ अपने आप प्रकाशित नहीं हैं, न छिद्रों से प्रकाशमान् हैं, तथा घड़ा भी इनका भासक नहीं है, किन्तु ये पदार्थ घड़े के अन्दर प्रकाशमान् दीपक के तेज से प्रकाशित हो रहे हैं।

वि०-"दीपक का तेज" इससे तेरा क्या अभिप्राय है? क्या दीयला, या बत्ती या कुछ और?

चि०–दीवले तथा तैल युक्त बत्ती से मेरा अभिप्राय नहीं है। कीन्तु दीवले और तैलयुक्त बत्ती के कारण जो चम्पे की कली के समान कुछ ज्वाला रूप से स्फुरण हो रहा है हे योगिन्! उसी से मेरा तात्पर्य है।

विवेकाश्रम उसके इस उत्तर को सुन कर सन्तुष्ट होगये, नेत्र बन्द करलिये, शरीर पर रोंगटे खड़े होगये, नेत्रों से जल बहने लगा और हिमालय के समान निश्चल होगये। सर्वाधिष्ठान आत्मा की बुद्धि में स्वयं अनुभव करते हुवे वह योगिराज संसार रूप बन्धन से विमुक्त होकर बाह्य विषयों से उपरत होगये। कुछ काल के पीछे उन्होंने बहिर्मुख होकर आंखे खोलीं और कहने लगेः–

वि०–हे भद्रे! बतला कि तूने मेरे उपदेश को ठीक ठीक समझा की नहीं? क्योंकि मेरा मन अन्यत्र आसक्त था इसलिये मुझे तेरे समझने या न समझने का ठीक ठीक ज्ञान नहीं।

चि०–आपने देह आदि से भिन्न जिस आत्म-तत्व को कुम्भ दीपक आदि का दृष्टन्त देकर स्पष्ट किया है उसे मैं समझ गई हूं। मुझ जैसी देहात्म बुद्धि वाली मूर्खा को आपके बिना कौन आत्मतत्व का ज्ञान ऐसी शीघ्रता से करा सकता है? अब आत्मा की ज्योति रूपता को प्रमाण और युक्ति से जानना चाहती हूं। अतः मुझपर कृपा करके कहिये।

वि०–आत्मा की स्वयं प्रकाशता के विषय में मैं तुमको प्रमाण बताता हूं सुन। ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ विदेह देश के स्वामी जनक नामक एक राजा थे। उन्होंने अपने घर पर आये हुवे श्रीयाज्ञवल्क्य मुनि की विधि पूर्वक भक्ति से पूजा की और वरदान देने के लिये उत्कण्ठित श्रीयाज्ञवल्क्य जी से कामप्रश्न [इच्छा पूर्वक प्रश्न करने को काम प्रश्न कहते हैं।] वर मांगा, जिसे उन्होंने उसको दिया। जनक राजा ने सभा में बहुत से प्रश्न करते करते श्रीयाज्ञवल्क्य मुनि से पूछा कि पुरुष किसके प्रकाश से अपना व्यवहार करता है? श्रीयाज्ञवल्क्य मुनि ने राजा को उत्तर दिया की यह पुरुष "आदित्यः ज्योतिः" है और इसके विषय में युक्ति भी बताई। इस संसार में पुरुष का खड़ा होना, बैठना, चलना, अन्यत्र जाकर कर्म करना और लौट कर अपने स्थान पर आना आदि सब कर्म सूर्य के प्रकाश से ही होता है। यदि सूर्य का प्रकाश न होता तो सब प्राणि अन्धे होते। अतः पुरुष "आदित्यः ज्योतिः" है। राजा ने फिर मुनि से पूछा कि सूर्य के अस्त हो जाने पर यह पुरुष किस ज्योति से व्यवहार करता है? तब मुनि ने कहा कि उस समय चन्द्रमा ही पुरुष को प्रकाश देने वाला है। राजाने फिर पूछा कि अमावस्या की रात्रि में चन्द्रमा की अनुपस्थिति में लोग किसके सहारे कर्म करते हैं? मुनि ने उत्तर दिया कि उस समय अग्नि के प्रकाश से व्यवहार करते हैं। इसी प्रकार आंधी आदि से दीपक के बुझ जाने पर वाणी रूप ज्योति से कार्य करते हैं। क्योंकि ऐसा देखने में आया है कि अन्धेरी रात्रि में मार्ग भूल जाने पर कुत्ते आदि के शब्द से ग्राम की दिशा को जाना जाता है। राजा ने पुनः प्रश्न किया कि स्वप्न काल में पुरुष अनेक व्यवहार करता है। उस समय सब इन्द्रियाँ भी मन में लीन हो जाती हैं तब यह पुरुष किसके प्रकाश से स्वप्न में व्यवहार करता है। तब मुनि ने कहा उस समय आत्मा ही स्वयं ज्योति है। अतः हे चित्तवृत्ते! आत्मा की स्वयं ज्योति रूपता के विषय में यही तेरे लिये प्रमाण है। अब युक्ति कहता हूं।

भजन

(संग्रह कर्ता पं० गौरीशंकर ब्रह्मचारी)

चले गये सब अचल के मुंह में,
नाम न नामावरी रही ॥
सब निशान मिट गये तिन्हादे,
नाम न नामावरी रही ॥
यह दो दिन जीवन दुनियां का,
क्या शाह अमीर वज़ीर बने ।
कंगाल करी गुजरान जगत में,
दो दिन चर्चा खरी रही ॥
पल छिन में कुछ बनाया है,
कोई जुलमकरो कोई अदलकरो ।
जब मौत ने आकर पकड़ लिया,
तब मनकी मनमें धरी रही ॥

२

कहा मन विषयन में लपटाई ॥ टेक ॥
या जगमें कोई रहन न पावे, इक आवे इक जाई ॥
काको तन धन सम्पति काकी, कासों नेह लगाई ॥
जो दीसै सो सकल विनाशे, ज्यूं बादर की छांई ॥
तज अभिमान शरण संतन गहु, मुक्त होय छिनमांही ॥
जन नानक भगवन्त भजन विनु, सुख सुपनेहु नांही ॥

३

तू मेरा पिता तू ही मेरी माता ।
तू मेरे जीव प्राण सुख दाता ॥ टेक ॥
तू मेरा ठाकुर हौं दास तेरा ।
तुमबिन अवर नहिं कोई मेरा ॥ १ ॥
कर किरपा करो प्रभु दात ।
तुमरी स्तुति करौं दिन रात ॥ २ ॥
हम तेरे जंत्र तू बजावन हारा ।
हम तेरे भिखारी तू दातारा ॥ ३ ॥
तव प्रसाद रंग रस माणे ।
घट २ अंतर आप समाने ॥ ४ ॥
तुमरि कृपा ते जपिये नाऊं ।
साधु संगत तुमरे गुण गाऊं ॥ ५ ॥
तुमरी दया ते हो दर्द विनास ।
तुमरी माया ते कमल विकास ॥ ६ ॥
हौं बलिहार जाऊं गुरु देव ।
सफल दर्श जाकी निर्मल सेव ॥ ७ ॥
दया करो ठाकुर प्रभु मेरे ।
गुण गावे नानक नित तेरे ॥ ८ ॥

४

राजन कौन तिहारे आवे ॥ टेक ॥
ऐसो भाव विदुर को देखो वह गरीब मोहे भावे ॥
हस्ती देख भरमते भूला श्री भगवान न जन्यो ।
तुमरो दूध विदुर को पानी अमृत कर मैं मान्यो ॥
खीर समान साग मैं पाया गुण गावत रैन विहानी ।
कबीर को ठाकुर आनन्द विनोदी जात न काहुकी मानी

५

कौह रांसक है इन बातन को ॥ टेक ॥
नन्द नन्दन बिन कासों कहिये
सुनरी सखी मेरे दुखिया मन को ॥ १ ॥
कहां वह जमना विपिन मनोहर,
कहं वह चन्द शरद रातन को ॥ २ ॥
कहं वह सेज पौढबो बनको,
फूल बिछौना मृदु पातन को ॥ ३ ॥
कहं वह दर्श पर्श परमानन्द,
कोमल तन कोमल गातन को ॥ ४ ॥

REGD No. L 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१.	भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य	॥=)
२.	भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	,,	।=)
३.	गीता मूल (मोटा टाइप)	मूल्य नित्य पाठ	
४.	वेदोपनिषद्		।=)
५.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	,,	=)
६	ज्ञानधर्मोपदेश	,,	=)॥
७.	भक्ति ज्ञान योग संग्रह	,,	=)॥
८.	सत्य शब्द संग्रह (गुटका)	,,	)
९.	सत्य शब्द संग्रह	,,	॥=)
१०.	शब्द सदाचार संग्रह	,,	=)॥
११.	शब्द सार संग्रह	,,	=)
१२.	शब्दसंग्रह	,,	=)॥
१३.	सारसंग्रह	,,	)
१४.	भाषा फक्किका प्रकाश	,,	।=)
१५.	मनुस्मृति सार	,,	≡)
१६.	भक्ति चिन्तामणि	,,	।≡)
१७.	भगवद्भक्तांक	,,	॥=)
१८.	भगवदंक	,,	॥)
१९.	गवांक	,,	१)
२०.	महात्मांक	,,	१)

नोटः एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहियें।

मिलने का पताः-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक भगवानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।